वित्तीय क्षेत्र के सुधार तथा मौद्रिक नीति : भारतीय अनुभव*

राकेश मोहन

I. परिचय

नब्बे के दशक के प्रारंभ से शुरू हुए सुधारों से भारतीय अर्थव्यवस्था में समष्टि आर्थिक तथा वित्तीय स्थिरता के माहौल में ऊंची वृद्धि हुई है। इस अवधि के दौरान बड़े स्तर पर आर्थिक सुधार हुए हैं जिनसे अर्थव्यवस्था का कोई क्षेत्र अछूता नहीं रहा। मूल रूप से इन सुधारों का खाका ही इस प्रकार बनाया गया था कि प्रतिस्पर्धा के स्तर में वृद्धि करते हुए अर्थव्यवस्था की कार्यक्षमता बढ़ाई जा सके। भारतीय सुधारों की कहानी को एक सुव्यवस्थित दस्तावेज की शक्ल दे दी गई है (उदाहरणार्थ, अहलूवालिया 2002); फिर भी इस बात को कम ही अहमियत दी गई है कि भारत ने यह तीव्र वृद्धि मूल्य एवं वित्तीय स्थिरता कायम रखते हुए हासिल की है। बढ़ते हुए खुलेपन के परिणामस्वरूप (1190) की दूसरी छमाही से भारत के पास बाहरी आघातों के झेलने का कोई कवच नहीं था। अंतरराष्ट्रीय तथा घरेलू दोनों प्रकार के इन आघातों में एशिया, ब्राजील एवं रूस का सिलसिलेवार आर्थिक संकट, अमेरिका में 9/11 का आंतकी हमला, सीमा पर तनाव, परमाणु परीक्षणों के बाद लगाए गए प्रतिबंध, राजनीतिक अनिश्चितता, सत्ता-परिवर्तन तथा चालू तेल आघात शामिल हैं। तब भी, वित्तीय बाजारों में स्थिरता बनी रही। वास्तव में (1190) के दशक के मध्य से मुद्रास्फीति को नियंत्रित करते हुए उसे लगभग पांच प्रतिशत के औसत तक लाया गया है जो पिछले चार दशकों के दौरान लगभग आठ प्रतिशत के औसत से कम होने के कारण अपने आप में विशिष्ट है। साथ-ही-साथ वित्तीय क्षेत्र की स्थिति में काफी महत्वपूर्ण सुधार हुए हैं।

भारत में सुधारों का रास्ता अधिकतर अन्य उभरती हुई अर्थव्यवस्थाओं से भिन्न रहा है : यह रास्ता नपा-तुला, क्रमिक, सतर्क एवं नियत प्रक्रिया के रूप में रहा है जो अनेक ऐसी समृद्धियों से वंचित रहा जो दूसरे देशों में देखी जा सकती थी। मैं इस पर्चे में इस बात पर बहस करूंगा कि वित्तीय क्षेत्र तथा मौद्रिक नीति के ढांचे में सुधारों ने समूचे सुधारों की कुंजी की भूमिका निभाई है जिसने अधिक मूल्य एवं वित्तीय स्थिरता की नींव डाली। विभिन्न क्षेत्रों में बाजारों की स्थिति को ध्यान में रखकर इन क्षेत्रों में सुधारों को भली-भांति व्यवस्थित किया गया है।

भारत में शुरुआती 90 के दशक में प्रारंभ किए गए वित्तीय क्षेत्र के सुधारों का मुख्य लक्ष्य एक समर्थ, प्रतिस्पर्धी तथा स्थिर वित्तीय क्षेत्र का निर्माण करना था जो उस समय वृद्धि को प्रेरित करने में बहुत अधिक योगदान कर सकता था। इसी के साथ-साथ मौद्रिक नीति के ढांचे में, मौद्रिक प्रबंधन की प्रत्यक्ष लिखतों से अप्रत्यक्ष लिखतों पर बढ़ती हुई निर्भरता के रूप में चरणबद्ध परिवर्तन हुआ। तथापि, चूंकि मुद्रा का समुचित रूप से मौद्रिक अंतरण वित्तीय बाजारों की समग्र कार्यप्रणाली में ब्याज दरों एवं विनिमय दरों के मूल्यों का पता लगाए बिना नहीं किया जा सकता इसलिए उसी के अनुरूप मुद्रा बाजार, सरकारी प्रतिभूति बाजार तथा विदेशी मुद्रा बाजार का विकास आवश्यक हो गया। इसलिए विभिन्न क्षेत्रों के सुधारों को समन्वित करना था। इस प्रक्रिया में भारतीय अर्थव्यवस्था के शेष विश्व के साथ एकीकरण की आवश्यकता को पहचाना गया और उसे पूरा करने की व्यवस्था की गई।

इसी पृष्ठभूमि में, इस पर्चे को तीन खंडों में प्रस्तुत किया गया है। सबसे पहले मैं वित्तीय क्षेत्र तथा मौद्रिक नीति में हुए सुधारों का सारांश प्रस्तुत करूँगा। दूसरे खंड में सुधारों का उनके नतीजों एवं वित्तीय क्षेत्र की स्वस्थ स्थिति के अनुसार एक मूल्यांकन प्रस्तुत किया जाएगा। अंत में आखिरी खंड के अंतर्गत मौद्रिक व्यवस्था की दृष्टि से महत्वपूर्ण रूप से प्रासंगिक मुद्दों के संदर्भ में भारतीय अनुभव से उभरकर सामने आए सबकों पर विचार किया जाएगा।

---

* 2 जून 2006 को स्टैंफोर्ड में स्टैंफोर्ड सेंटर फॉर इंटरनेशनल डेवलपमेंट तथा स्टैंफोर्ड इंस्टीट्यूट फॉर इकनॉमिक पॉलिसी रिसर्च द्वारा एशिया में आर्थिक नीति विषय पर आयोजित सम्मेलन के अवसर पर भारतीय रिज़र्व बैंक के उप गवर्नर, डॉ. राकेश मोहन द्वारा प्रस्तुत पेपर। मैं इस पेपर को तैयार करने में सहायता के लिए आर. कन्नन, मुनीष कपूर, इन्द्रनील भट्टाचार्य और पार्थ रे का ऋणी हूँ। सामान्य स्वत्व त्याग लागू है।

II. वित्तीय क्षेत्र तथा मौद्रिक नीति : उद्देश्य एवं सुधार

नब्बे के शुरुआती दशक तक भारत के वित्तीय क्षेत्र को मैक किनॉन तथा शॉ के अनुसार ''वित्तीय नियंत्रण'' के एक अच्छे उदाहरण के रूप में व्याख्यायित किया जा सकता था। मौद्रिक नीति राजकोषीय नीति के अधीन थी। वित्तीय प्रणाली में नियंत्रित ब्याज दरों, निदेशित ऋण कार्यक्रमों, दुर्बल बैंकिंग ढांचे, समुचित लेखाकरण तथा जोखिम प्रबंध की प्रणालियों के अभाव तथा वित्तीय बाजार के प्रमुख सहभागियों के कार्य-कलापों में पारदर्शिता के अभाव जैसे व्यापक विनियमों के लक्षण थे (मोहन, 2004 ख)। इस प्रकार की प्रणाली संसाधनों के सक्षमतापूर्ण आबंटन को बाधित करती थी। नब्बे के शुरुआती दशक में प्रारंभ किए गए वित्तीय क्षेत्र के सुधारों के द्वारा इन कमजोरियों से पार पाने का प्रयास किया गया है ताकि अर्थव्यवस्था में संसाधनों के आबंटन की सक्षमता बढ़ाई जा सके।

इसी के साथ-साथ, रिज़र्व बैंक ने मौद्रिक नीति की अंतरण व्यवस्था में वित्तीय बाजारों विशेष रूप से मुद्रा, सरकारी प्रतिभूति तथा विदेशी मुद्रा बाजारों की महत्वपूर्ण भूमिका को ध्यान में रखते हुए उनके विकास में गहरी रुचि ली। जैसाकि दूसरे केंद्रीय बैंकों में होता है, मुद्रा बाजार रिज़र्व बैंक के हस्तक्षेप का केंद्र बिंदु था जिसका उद्देश्य अल्पकालिक चलनिधि प्रवाह को, विदेश मुद्रा बाजार के साथ उसके संबंधों के कारण, संतुलित किया जा सके। इसी प्रकार सरकारी प्रतिभूति बाजार समूचे ऋण बाजार के लिए महत्वपूर्ण है क्योंकि यह ऋण बाजार के अन्य लिखतों के मूल्य निर्धारण में बेंचमार्क का काम करता है जो आय वक्र में मौद्रिक प्रवाह की प्रक्रिया में सहायक है। वस्तुतः रिज़र्व बैंक मूल्यों का पता करने के लिए इन बाजारों हेतु 1986 से संस्थाएं एवं आधारभूत ढांचा विकसित करने के प्रयास कर रहा है। सक्षम, स्थिर एवं स्वस्थ वित्तीय बाजारों का विकास करने की दिशा में रिज़र्व बैंक के प्रयासों ने 1991 के बाद जोर पकड़ा। केंद्र सरकार तथा रिज़र्व बैंक एवं विभिन्न विनियामकों के भी बीच घनिष्ठ समन्वय स्थापित हुआ है जो भारत में वित्तीय बाजारों के सुव्यवस्थित एवं सहज विकास में सहायक सिद्ध हुआ है।

भारत में वित्तीय क्षेत्र के सुधारों की प्रमुख रूपरेखाएं क्या रही हैं? इसे समग्रता में देखने के लिए इस पर एक सरसरी नज़र डालना उपयोगी है :

- पूर्व वित्तीय नियंत्रण की समाप्ति
- एक सक्षम, उत्पादक तथा लाभप्रद वित्तीय क्षेत्र का निर्माण
- ब्याज-दरों के बाजार निर्धारण द्वारा मूल्य की खोज प्रक्रिया संभव करना जिससे संसाधनों की आबंटनात्मक सक्षमता में सुधार होता है;
- संस्थाओं को परिचालनात्मक तथा कार्यात्मक स्वायत्तता प्रदान करना;
- अंतरराष्ट्रीय प्रतिस्पर्धा बढ़ाने के लिए वित्तीय प्रणाली तैयार करना;
- नपे-तुले ढंग से बाह्य क्षेत्र को खोलना तथा
- घरेलू एवं बाह्य आघातों का सामना करने के लिए वित्तीय स्थिरता को बढ़ावा देना।

नब्बे के शुरुआती दशक से प्रारंभ हुए वित्तीय क्षेत्र के सुधारों को विश्लेषण की दृष्टि से दो चरणों में वर्गीकृत किया जा सकता है। प्रथम चरण - या सुधारों के प्रथम चरण - का उद्देश्य एक सक्षम, उत्पादक तथा लाभप्रद वित्तीय क्षेत्र का निर्माण करना था जो परिचालनात्मक लचीलेपन तथा कार्यात्मक स्वायत्तता के माहौल में काम करेगा। दूसरे चरण - या सुधारों के दूसरे चरण - जो 1990 के दशक के मध्य में शुरू हुआ था, में वित्तीय प्रणाली को मजबूत तथा संरचनात्मक सुधार प्रारंभ करने पर बल दिया गया। वित्तीय क्षेत्र के सुधारों के दर्शन पर संक्षिप्त विहंगम दृष्टि डालने के बाद मैं वित्तीय क्षेत्र के विभिन्न क्षेत्रों एवं हिस्सों में किए गए सुधारों पर संक्षेप में चर्चा करना चाहूँगा।

बैंकिंग क्षेत्र

बैंकिंग क्षेत्र के सुधारों का मुख्य उद्देश्य एक बहुआयामी, सक्षम एवं प्रतिस्पर्धात्मक वित्तीय प्रणाली को बढ़ाना देना था जिसका अंतिम लक्ष्य परिचालनात्मक लचीलेपन, वित्तीय स्थिति में सुधार तथा संस्थागत सुदृढ़ता के माध्यम से संसाधनों की आबंटनात्मक सक्षमता में सुधार लाना था। इन सुधारों को, विवेकपूर्ण विनियमनों की ओर बढ़ने के साथ-साथ सांविधिक नियंत्रणों में कमी के माध्यम से वित्तीय नियंत्रण को समाप्त करने पर केंद्रित किया गया है। इसके अतिरिक्त जमाराशि तथा बैंकों द्वारा दिए जाने वाले ऋणों पर ब्याज दरों को क्रमशः विनियंत्रित किया गया है (बाक्स I)।

चूंकि भारतीय बैंकिंग प्रणाली शुरुआती 1990 के दशक के प्रारंभ से प्रधान रूप से सरकार के स्वामित्व में आई गई इसलिए बैंकिंग क्षेत्र के सुधारों में मूल रूप से द्वि-स्तरीय दृष्टिकोण अपनाया गया। प्रथम, भारतीय जरूरतों के हिसाब से बनाए गए विवेकपूर्ण विनियमन एवं पर्यवेक्षण में अंतरराष्ट्रीय स्तर पर अपनाई गई सर्वश्रेष्ठ प्रथाओं

[1] रेड्डी (2002) ने बताया कि भारत में वित्तीय क्षेत्र के सुधारों के प्रति दृष्टिकोण पाँच सिद्धांतों पर आधारित रहा है : (i) सुधार उपायों की सतर्क और समुचित क्रमबद्धता; (ii) पारस्परिक तौर पर सुदृढ़ता प्रदान करने वाले मानदंडों की शुरुआत; (iii) मौद्रिक, राजकोषीय और बाह्य क्षेत्रों में पूरक सुधारों की शुरुआत; (iv) वित्तीय संस्थाओं का विकास; और (v) वित्तीय बाजार का विकास।

बॉक्स I : बैंकिंग क्षेत्र में सुधार

प्रतियोगिता बढ़ाने वाले उपाय

- सार्वजनिक क्षेत्र के बैंकों को परिचलनात्मक स्वायत्तता देना, उन्हें इक्विटी बाजार से चुकता पूंजी के 49 प्रतिशत तक पूंजी जुटाने की अनुमति देकर उनके सार्वजनिक स्वामित्व को कम करना।
- भारतीय निजी क्षेत्र, विदेशी तथा संयुक्त उपक्रम वाले बैंकों तथा बीमा कंपनियों के प्रवेश के लिए पारदर्शी मानदंड, विदेशी प्रत्यक्ष निवेश (एफ डी आई) तथा संविभाग निवेश के रूप में वित्तीय क्षेत्र में विदेशी निवेश की अनुमति, उत्पाद संविभाग एवं व्यापार गतिविधियों को बहुमुखी बनाने के लिए अनुमति।
- विदेशी बैंकों की उपस्थिति का मानचित्र तथा निजी क्षेत्र के बैंकों, बैंकों तथा ग़ैर बैंकिंग वित्तीय कंपनियों के विलय तथा समामेलन का दिशा निदेश।
- निजी क्षेत्र के बैंकों में स्वामित्व तथा संचालन संबंधी दिशा निदेश।

बाजार की शक्तियों की भूमिका बढ़ाने वाले उपाय

- आरक्षित निधि की आवश्यकता के माध्यम से पूर्व क्रयाधिकार में तीव्र कमी, सरकारी प्रतिभूतियों के लिए बाजार निर्धारित मूल्य, कुछ अपवादों को छोड़कर नियंत्रित ब्याज दरों को समाप्त करना तथा बाजार अनुशासन को सुगम बनाने के लिए पारदर्शिता तथा प्रकटन संबंधी मानदंडों में वृद्धि।
- वास्तविक अंतर बैंक मांग मुद्रा बाजार की शुरूआत, अल्पकालिक चलनिधि प्रबंधन के लिए नीलामी आधारित रेपो-रिवर्स रेपो, परिष्कृत भुगतान तथा निपटान प्रणाली को सुविधाजनक बानाना।
- अभौतिकीकरण (डीमैटियरलाइजेशन) में महत्वपूर्ण प्रगति तथा प्रतिभूतिकृत परिसंपत्तियों के लिए बाजारों का विकास किया जा रहा है।

विवेकपूर्ण उपाय

- सर्वश्रेष्ठ अंतरराष्ट्रीय प्रथाओं का चरणबद्ध कार्यान्वयन तथा जोखिम आधारित पूंजी पर्याप्तता अपेक्षा, लेखाकरण, आय-निर्धारण, प्रावधानीकरण तथा प्रकटन संबंधी मानदंडों की शुरूआत।
- जोखिम के विभिन्न घटकों के निर्धारण के माध्यम से जोखिम प्रबंधन के उपाय, विभिन्न परिसंपति वर्गों के जोखिम भार का निर्धारण, संबद्ध ऋण संबंधी मानदंड, जोखिम संकेंद्रण, निवेश संविभाग के लिए बाजार के आधार पर मूल्य निर्धारण लागू करना तथा संवेदनशील गतिविधियों में निधि-निवेश की सीमाएं।
- 'अपने ग्राहक को जानिए' तथा 'धन शोधन' संबंधी दिशा निदेश, बासेल II का मार्गचित्र, बाजार जोखिम के लिए पूंजी प्रभार की शुरूआत, अनर्जक परिसंपत्तियों के लिए उच्चतर स्तर का प्रावधानीकरण, स्वामित्व तथा संचालन के लिए दिशानिदेश, प्रतिभूतिकरण तथा ऋण पुनर्संरचना व्यवस्था संबंधी मानदंड, आदि।

संस्थागत तथा वैधानिक उपाय

- त्वरित वसूली / पुनर्संरचना के लिए लोक अदालत, ऋण वसूली न्यायाधिकरण, परिसंपत्ति पुनर्निर्माण कंपनी, निपटान परामर्शदात्री समितियां, आदि
- ऋणी के अधिकार सुनिश्चित करने के लिए वित्तीय परिसंपत्तियों का प्रतिभूतिकरण तथा पुनर्निर्माण एवं प्रतिभूति ब्याज का प्रवर्तन (सरफेसीई) अधिनियम, 2002 के बाद में इसमें किए गए संशोधन लागू करना।
- चूककर्ताओं तथा अन्य उधारकर्ताओं से संबंधित सूचना साझा करने के लिए भारतीय ऋण आसूचना ब्यूरो लिमिटेड (सी आई बी आई एल) की स्थापना करना।
- सावधि आय प्रतिभूतियों तथा मुद्रा बाजार लिखतों के भुगतान एवं निपटान प्रणाली को सुगम बनाने के लिए केंद्रीय प्रति पक्षकार के रूप में भारतीय समाशोधन निगम लि. की स्थापना करना।

पर्यवेक्षी उपाय

- वाणिज्यिक बैंकों, वित्तीय संस्थानों एवं गैर बैंकिंग वित्तीय कंपनियों के लिए शीर्ष पर्यवेक्षी प्राधिकरण के रूप में वित्तीय पर्यवेक्षण बोर्ड की स्थापना।
- केमल्स पर्यवेक्षी रेटिंग प्रणाली की शुरूआत, जोखिम आधारित पर्यवेक्षण की दिशा में कदम, वित्तीय समूहों का समेकित पर्यवेक्षण, नियंत्रण विवरणियों के द्वारा अप्रत्यक्ष (ऑफ-साइट) निगरानी को मजबूत करना।
- सांविधिक लेखापरीक्षकों की भूमिका को पुनः निर्धारित करना, आंतरिक लेखापरीक्षा के द्वारा आंतरिक नियंत्रण में वृद्धि करना।
- कार्पोरेट नियंत्रण को मजबूत करना, महत्वपूर्ण शेयर धारकों पर ध्यानपूर्वक नज़र रखना, निदेशकों के लिए उपयुक्त एवं उचित परीक्षण।

प्रौद्योगिकी संबंधी उपाय

- वित्तीय क्षेत्र के लिए संचार के मेरुदण्ड के रूप में इनफिनेट (इनफिनेट) की स्थापना, सरकारी प्रतिभूतियों में स्क्रीन-आधारित लेनदेन के लिए तयशुदा लेनदेन प्रणाली (एनडीएस) तथा तत्काल सकल निपटान प्रणाली (आरटीजीएस) की शुरूआत।

की शुरूआत करने के साथ बैंकिंग प्रणाली के भीतर प्रतिस्पर्धा के स्तर में धीरे-धीरे वृद्धि की गई। विशेष रूप से भारतीय बैंकों की जोखिम प्रबंधन क्षमता का निर्माण करने पर विशेष बल दिया गया जबकि बैंकिंग क्षेत्र में लचीलेपन, परिचालनात्मक स्वायत्तता तथा प्रतिस्पर्धा को सुनिश्चित करने के लिए उपाय किए गए। द्वितीय, विधिक ढांचे एवं प्रौद्योगिकीय प्रणाली सहित अन्य संस्थागत व्यवस्थाओं में सुधार करने के लिए सक्रिय कदम उठाए गए। एक सक्षम बैंकिंग प्रणाली के निर्माण में पर्यवेक्षण की महत्वपूर्ण भूमिका को ध्यान में रखते हुए पर्यवेक्षी प्रणाली में सुधार किया गया।

बैंकिंग प्रणाली की स्थिति सुधारने के लिए किए गए उपायों में शामिल हैं-: (i) जहां आवश्यक हो वहां पुनर्पूंजीकरण के द्वारा सार्वजनिक क्षेत्र के बैंकों की निवल पूंजी को फिर से बहाल करना; (ii) आन साइट एवं आफ साइट निगरानी के साथ पर्यवेक्षण प्रक्रिया को सुव्यवस्थित करना जिसके साथ बाह्य लेखा परीक्षण भी चलता रहे; iii) जोखिम आधारित पर्यवेक्षण का शुरूआत; iv) एक त्वरित सुधारात्मक कार्रवाई प्रणाली के तहत समस्याग्रस्त बैंकों के लिए सुगठित एवं विवेकाधीन हस्तक्षेप की प्रक्रिया शुरू करना; v) वित्तीय समुच्चयों के विनियमन एवं पर्यवेक्षण के समन्वय में वृद्धि करने में सहायक व्यवस्था को मजबूत करना (प्रक्रियाधीन); vi) लेनदार के अधिकार मजबूत करना तथा vii) कार्पोरेट गवर्नेंस पर अधिक बल।

बैंकिंग प्रणाली को सर्वश्रेष्ठ अंतरराष्ट्रीय मानकों के अनुसार बेंचमार्क करने के लिए ऐसे नीतिगत दृष्टिकोण के अनुरूप जिसमें क्रमिक सामंजस्य पर बल दिया गया हो, भारत के सभी वाणिज्यिक बैंकों से अपेक्षा है कि वे 31 मार्च 2007 से बासेल II को लागू करना प्रारंभ कर देंगे - हालांकि इसके लिए जरूरी तैयारियों से जुड़े ताजा संकेतों को देखा जाए तो इसको लागू करने की तिथि को थोड़ा आगे बढ़ाने की संभावना से इंकार नहीं किया जा सकता है (रेड्डी, 2006 ए)। बैंकिंग प्रणाली के परिष्कृत एवं विकास से संबंधीत मात्रात्मक अंतरों पर विचार करने के बाद यह निर्णय किया गया है कि प्रारंभ में बैंक ऋण जोखिम के प्रति मानकीकृत दृष्टिकोण तथा परिचालनात्मक जोखिम के प्रति मूल सूचक दृष्टिकोण अपनाएंगे। बैंकों तथा पर्यवेक्षकों दोनों के द्वारा पर्याप्त कुशलता विकसित कर लिए जाने के बाद कुछ बैंकों को आंतरिक रेटिंग पर आधारित (आई आर बी) दृष्टिकोण अंगीकार करने की अनुमति दे दी जाएगी। यद्यपि भारत में बासेल - II को लागू करने के लिए यह अनिवार्य होगा कि बैंकों के पास और अधिक पूंजी हो। वर्तमान में बैंकिंग प्रणाली के पास उपलब्ध अतिरिक्त पूंजी अर्थात् जोखिम भारित (सी आर ए आर) 12 प्रतिशत से अधिक हैं - जिससे थोडी राहत मिलती है। बैंकों को अपनी पूंजी आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए उन्हें अधिक लचीला बनाने एवं अवसर प्रदान करने की दृष्टि से रिज़र्व बैंक ने नीति संबंधी दिशा-निदेश जारी किए हैं जिनके आधार पर बैंक अनेक प्रकार के लिखत जारी कर सकते हैं, जैसे नवोन्मेषी सतत ऋण लिखत, सतत ग़ैर संचयी वरीयता शेयर, पुनर्भुगतान योग्य संचयी वरीयता शेयर एवं ऋण लिखत।

मौद्रिक नीति के ढांचे में सुधार

सुधारों की शुरूआत के समय से ही मौद्रिक नीति का जोर मुद्रा सरकारी प्रतिभूति तथा विदेशी मुद्रा बाजार सहित वित्तीय बाजार के विभिन्न क्षेत्रों के बीच आपसी संबंधों को बढ़ाकर वित्तीय क्षेत्र में बाजार के विभाजन को कम करने का रहा है। जिस महत्वपूर्ण नीतिगत घटना के कारण एक अधिक स्वतंत्र मौद्रिक नीति का वातावरण बना है और सरकारी प्रतिभूति बाजार का विकास हुआ है वह है : सितंबर 1994 में सरकार और भारतीय रिज़र्व बैंक के बीच हुए समझौते के द्वारा अप्रैल 1997 से सरकार के राजकोषीय घाटे के स्वतः मौद्रिकीकरण की समाप्ति। वित्तीय उदारीकरण से उत्पन्न चुनौतियों का सामना करने तथा मौद्रिक प्रबंधन की बढ़ती हुई जटिलताओं का समाधान करने की दृष्टि से रिज़र्व बैंक ने 1998-99 से मुद्रा केंद्रित ढांचे को छोड़कर बहुल सूचक दृष्टिकोण अपना लिया था। अल्पकालिक ब्याज दरें मौद्रिक नीति संबंधी दृष्टिकोण का मुख्य सूचक बनकर उभरी हैं। एक महत्वपूर्ण परिवर्तन मौद्रिक प्रबंधन के प्रत्यक्ष लिखतों से हटकर बाजार आधारित लिखतों की ओर कदम बढ़ाना हुआ है। अंतरराष्ट्रीय प्रवृत्तियों के अनुरूप रिज़र्व बैंक ने एक चलनिधि प्रबंधन ढांचे की स्थापना की है जिसके अंतर्गत बाजार चलनिधि का प्रबंधन एक मिली-जुली व्यवस्था द्वारा किया जाता है जिसमें बाजार चलनिधि का प्रबंध खुला बाजार परिचालन (ओ एम ओ) रेपो सहित स्थायी सुविधाओं में हुए परिवर्तन के द्वारा किया जाता है। इन बाजार परिचालनों को प्रभावशाली ढंग से संचालित करने के लिए रिज़र्व बैंक ने अनेक उपाय किए हैं जिससे उनके तुलन पत्र की स्थिति मजबूत हो सके।

पिछले कुछ वर्षों में मौद्रिक नीति को सूत्रबद्ध करने की प्रक्रिया अपेक्षाकृत अधिक स्पष्ट, परामर्शी एवं सहभागी हुई है जिसका झुकाव बाहर की तरफ रहा है, वहीं आंतरिक कार्य प्रक्रियाओं को भी पुनः निरूपित किया गया है। एक महत्वपूर्ण कदम मौद्रिक नीति पर एक तकनीकी सलाहकार समिति का गठन है जिसमें बाहरी मामलों के विशेषज्ञ होंगे जो रिज़र्व बैंक को मौद्रिक नीति के दृष्टिकोण पर सलाह देंगे (बॉक्स II)।

सुधारों के परिणामस्वरूप अब वित्तीय बाजारों के क्षेत्र, गहनता एवं गतिविधियों में वृद्धि हुई है जिसे रिज़र्व बैंक को अपने उद्देश्यों को पूरा करने के लिए परोक्ष लिखतों का उदारतापूर्वक प्रयोग करने का मार्ग प्रशस्त हुआ है। यह माना जाता है कि सक्षम मूल्यों का पता लगाने के लिए वित्तीय बाजारों में स्थिरता बहुत महत्वपूर्ण है। विनिमय दरों एवं

बॉक्स II : मौद्रिक नीति ढांचे में सुधार

उद्देश्य

- विकास के समर्थन में मूल्य स्थिरता बनाए रखने तथा अर्थव्यवस्था के उत्पादक क्षेत्रों को पर्याप्त ऋण की उपलब्धता सुनिश्चित करने का जुड़वां लक्ष्य मौद्रिक नीति के दृष्टिकोण को लगातार नियंत्रित कर रहा है यद्यपि इन उद्देश्यों पर तुलनात्मक दबाव एक समुचित संतुलन बनाए रखने के महत्व के आधार पर बदलता रहा है।
- वित्तीय बाजार में हो रहे निरंतर विकास तथा बढ़ते हुए उदारीकरण को प्रतिबिंबित करने के लिए एक मध्यवर्ती लक्ष्य के रूप में व्यापक मुद्रा के प्रयोग पर से दबाव हटा लिया गया है तथा एक बहुल सूचक दृष्टिकोण अपनाया गया है।
- बहुल लिखतों के विकास पर जोर दिया गया है ताकि एक उदार तथा दो-तरफा तरीके से अल्प समय में चलनिधि तथा ब्याज दर संकेत भेजे जा सकें।
- मुद्रा, सरकारी प्रतिभूति तथा विदेशी मुद्रा बाजारों सहित वित्तीय बाजार के विभिन्न क्षेत्रों के बीच अंतर संबधों में वृद्धि।

लिखत

- मौद्रिक नीति के संचालन के लिए प्रत्यक्ष लिखतों (जैसे नियंत्रित ब्याज दर, आरक्षित निधि अपेक्षाएं, चुनिंदा ऋण नियंत्रण) से अप्रत्यक्ष लिखतों (जैसे खुला बाजार परिचालन, सरकारी प्रतिभूतियों की खरीद एवं पुनर्खरीद) की ओर कदम।
- चलनिधि समायोजन सुविधा (एलएएफ) की शुरूआत जो रेपो तथा रिवर्स रेपो नीलामियों के द्वारा संचालित होती है, अल्पकालिक ब्याज दर के लिए प्रभावी ढंग से एक सीमा प्रदान करती है। चलनिधि समायोजन सुविधा एक दिवसीय बाजार में चलनिधि प्रबंधन तथा ब्याज दर के लिए एक सूचक उपकरण दोनों के रूप में उभरकर सामने आई है।
- संपूर्ण बाजार चलनिधि की स्थिति विशेष रूप से पूंजी प्रवाह से उत्पन्न स्थिति में लेनदेन के लिए खुला बाजार परिचालनों का प्रयोग।
- चलनिधि समायोजन सुविधा की अल्पकालिक चलनिधि प्रबंधन को प्रभावित किए बग़ैर स्थायी पूंजी अंतर्प्रवाह से व्यवहार करने के लिए एक अतिरिक्त लिखत के रूप में बाजार स्थिरीकरण योजना (एम एस एस) की शुरूआत।

विकासात्मक उपाय

- सरकार एवं रिज़र्व बैंक के बीच एक समझौते के माध्यम से स्वचालित मुद्रीकरण को बंद करना। खजाना बिल बाजार को युक्तियुक्त बनाना। सुपुर्दगी बनाम भुगतान प्रणाली की शुरूआत तथा अंतर बैंक रेपो बाजार को व्यापक बनाना।
- सरकारी प्रतिभूति बाजार में प्राथमिक व्यापारियों का श्री गणेश ताकि वे बाजार नायक (मार्केट मेकर) की भूमिका निभा सकें।
- प्रतिभूति संविदा विनियमन अधिनियम (एस सी आर ए) में संशोधन ताकि विनियामक ढांचा सृजित किया जा सके।
- इस प्रकार की प्रतिभूतियों पर ब्याज दरों को बाजार संबद्ध बनाकर सरकारी प्रतिभूति बाजार को व्यापक बनाना। सरकारी प्रतिभूतियों की नीलामी की शुरूआत। संबंधित बाजारों के लिए एक बेंचमार्क के रूप में सरकारी प्रतिभूति बाजार में जोखिम रहित विश्वसनीय प्रतिलाभ वक्र का विकास।
- वास्तविक अंतर बैंक मांग मुद्रा बाजार का विकास। अन्य मुद्रा बाजार लिखतों में भागीदारी के लिए गैर बैंक प्रतिभागी।
- तयशुदा लेन देन प्रणाली (एन डी एस) के द्वारा सरकारी प्रतिभूतियों में स्वचालित स्क्रीन-आधारित लेनदेन की शुरूआत। भारतीय समाशोधन निगम लिमिटेड के द्वारा जोखिम मुक्त भुगतान एवं निपटान प्रणाली की शुरूआत। तत्काल सकल भुगतान प्रणाली की चरणबद्ध शुरूआत।
- विदेशी मुद्रा बाजार को व्यापक बनाना एवं प्राधिकृत व्यापारियों की स्वायत्तता में वृद्धि।

संस्थागत उपाय

- मौद्रिक नीति पर तकनीकी परामर्शदात्री समिति का गठन करना जिसमें समष्टि आर्थिक तथा मौद्रिक विकास की समीक्षा करने के लिए बाहर के विशेषज्ञ हों और जो मौद्रिक नीति के दृष्टिकोण के संबंध में भारतीय रिज़र्व बैंक को परामर्श दें।
- भारतीय रिज़र्व बैंक के भीतर अलग से एक वित्तीय बाजार विभाग का गठन।

ब्याज दरों में अत्यंत उतार-चढ़ाव इन परिवर्तनशील दरों के अंतर्निहित मूल्य को ढक लेते हैं जिससे भ्रामक संकेतों को बढ़ावा मिलता है। चूंकि विनिमय दर तथा ब्याज दर दोनों धन की कीमत दर्शाने वाले मुख्य मूल्य हैं इसलिए अर्थव्यवस्था के सक्षमतापूर्वक काम करने के लिए यह विशेष रूप महत्वपूर्ण है कि ये दोनों दरें बाजार के आधार पर तय हों और आसानी से लागू की जा सकें। अतः रिज़र्व बैंक ने विदेशी मुद्रा बाजार तथा मुद्रा बाजार लेनदेन को सुविधाजनक बनाने के लिए चलनिधि समायोजन सुविधा के रूप में एक चलनिधि प्रबंध ढांचे की व्यवस्था की है जिसके परिणाम अत्यधिक परिवर्तनशीलता रहित मूल्यों का पता लगाना होता हैं। चलनिधि समायोजन सुविधा के साथ-साथ

खुला बाजार परिचालनों एवं बाजार स्थिरीकरण योजना के द्वारा रिज़र्व बैंक को नीतिगत दृष्टिकोण के अनुसार बाजार चलनिधि का प्रबंधन करने में आर्थिक लचीलापन प्रदान किया है। चलनिधि समायोजन सुविधा (एलएएफ) को शुरू करने से कई लाभ हुए थे (मोहन, 2006 बी)।

- सबसे पहले इससे मौद्रिक नियंत्रण के प्रत्यक्ष लिखतों से अप्रत्यक्ष लिखतों के अंतरण में सहायता मिली और इस प्रक्रिया में प्रणाली की निश्चित भार अति से बचा जा सका।
- दूसरे, इससे मौद्रिक प्राधिकारियों को काफी लचीलापन हासिल हुआ है जिसके चलते वे प्रणाली की जरूरतों के हिसाब से दैनिक आधार पर समायोजन की मात्रा तथा दरें दोनों को निर्धारित कर सकते हैं।
- तीसरे, इसके कारण रिज़र्व बैंक के लिए यह संभव हुआ है कि वह दिन प्रतिदिन के चलनिधि असंतुलनों को पूरा करने के लिए दैनिक आधार पर निधि की आपूर्ति को व्यवस्थित कर सके।
- चौथे, इसके कारण रिज़र्व बैंक नीति दर में परिवर्तनों के माध्यम से निधि की मांग को प्रभावित कर सकता है।
- पांचवें, तथा सर्वाधिक महत्वपूर्ण लाभ यह है कि इसके कारण अल्पकालिक बाजार दरों को स्थिर करने में सहायता मिली।

चल निधि समायोजन सुविधा अब मौद्रिक नीति का एक प्रमुख परिचालनात्मक लिखत बनकर उभरी है। यद्यपि किसी ओवर नाइट ब्याज दर पर केंद्रित कोई औपचारिक लक्ष्य नहीं है, फिर भी चलनिधि समायोजन सुविधा को इस प्रकार निर्मित किया गया है कि वह ओवरनाइट ब्याज दरों को एक विशेषीकृत दरों के कॉरीडोर के भीतर हल्का सा मोड़ा जा सके जबकि निर्धारित रेपो एवं रिवर्स रेपो दरों के बीच का अंतर इस समय 100 आधार अंक है। साक्ष्य बताते हैं कि यह प्रयास अत्यधिक सफल रहा है क्योंकि ओवरनाइट ब्याज दर केवल कुछ बार अल्प समयावधियों के लिए इस कॉरीडोर से बाहर जा सकी। चलनिधि समायोजन सुविधा के कारण रिज़र्व बैंक के लिए यह संभव हुआ है कि वह बैंक की आरक्षित निधियों पर ध्यान केंद्रित करने पर बल न देकर ब्याज दरों पर ज्यादा ध्यान केंद्रित करे। इसके कारण मौद्रिक नियंत्रण में बगैर किसी नुकसान के नकदी आरक्षित निधि अनुपात (सी आर आर) को कम करने में सहायता मिली है।

प्रत्याशाओं की बढ़ती भूमिका के मद्देनज़र मौद्रिक नीति के दृष्टिकोण तथा उसके तर्क को बहुविध तरीकों से जनता के बीच प्रसारित किया गया है। राजकोषीय उत्तरदायित्व तथा बजट प्रबंधन अधिनियम, 2003 को कानूनी रूप प्राप्त होने से संस्थागत व्यवस्था को मजबूती मिली है और अप्रैल 2006 से रिज़र्व को अब प्राथमिक बाजार में सरकारी प्रतिभूतियां खरीदने की अनुमति नहीं होगी। मौद्रिक नीति के ढांचे के विकास की प्रक्रिया में काफी संस्थागत पहल भी किए गए हैं ताकि मुद्रा बाजार सक्षम तरीके से कार्य कर सके : प्रौद्योगिकीय आधारभूत ढांचे के साथ-साथ समुचित व्यापार, भुगतान एवं निपटान प्रणालियों का विकास।

वित्तीय बाजार

ब्याज दरों जैसे मौद्रिक प्रबंधन के परोक्ष लिखतों पर निर्भर किसी ढांचे की सफलता उस सीमा एवं गति पर निर्भर करती है जिसके साथ केंद्रीय बैंक की नीति में हुए परिवर्तनों को बाजार ब्याज दरों एवं अर्थव्यवस्था की विनिमय दर और वास्तविक क्षेत्र तक ले जाया जाता है। इस संप्रेषण व्यवस्था के अंतर्गत वित्तीय बाजारों द्वारा निभाई गई महत्वपूर्ण भूमिका को देखते हुए रिज़र्व बैंक ने एक असली अंतर-बैंक मुद्रा बाजार विकसित करने की दिशा में अनेक पहल किए हैं। इस दिशा में एक उल्लेखनीय एवं वांछनीय प्रगति असंपार्श्वीकृत मांग मुद्रा क्षेत्र से संपार्श्वीकृत बाजार रेपो तथा उधार एवं ऋण देयता (सी बी एल ओ) में मुद्रा बाजार गतिविधि में वास्तविक अंतरण रहा है। बाजार की गतिविधियों में असंपार्श्वीकृत क्षेत्र से संपार्श्वीकृत क्षेत्रों में अधिकांश बदलाव उन उपायों के कारण हुए हैं जिनके द्वारा मांग बाजार लेनदेन को केवल बैंकों एवं प्राथमिक व्यापारियों (पी डी) तक सीमित कर दिया गया है। यह नीति प्रेरित परिवर्तन वित्तीय स्थिरता के हित में है और इसके परिणाम सामने आ रहे हैं।

साथ-साथ सरकारी प्रतिभूति बाजार तथा विदेशी मुद्रा बाजार को विस्तृत एवं गहरा बनाने की दिशा में प्रयास किए हैं ताकि ब्याज दरों एवं विनिमय दर के संबंध में सक्षम रूप से मूल्य प्राप्ति की प्रक्रिया प्रारंभ की जा सके (बॉक्स III एवं IV)।

यह नोट करना उपयुक्त होगा कि वित्तीय बाजारों के विकास के प्रति चरणबद्ध दृष्टिकोण के कारण भारतीय रिज़र्व बैंक 1 अप्रैल 2006 से प्राथमिक बाजार से अलग हो सका है। इस कदम से सरकारी प्रतिभूति बाजार में पूरी तरह बाजार आधारित प्रणाली में परिवर्तन की प्रक्रिया पूरी हो जाती है। इससे आगे देखें तो बारहवें वित्त आयोग की सिफारिशों के अनुसार केंद्र सरकार राज्य सरकारों की ओर से संसाधन नहीं जुटा सकेगा जिन्हें इसके बाद स्वयं बाजार में सीधे उतरना होगा। इस प्रकार संसाधन जुटाने में राज्य सरकारों की क्षमता बाजार से निर्धारित होगी एवं खुद की वित्तीय स्थिति पर आधारित होगी। निर्बंध रूप से एक नए दौर में प्रवेश को सुनिश्चित करने के लिए मौजूदा संस्थागत प्रक्रियाओं का पुनर्निर्माण पहले ही प्रारंभ हो गया है (मोहन, 2006 बी)। इन कदमों से मौद्रिक परिचालनों के संचालन में अभीष्ट एकीकरण हासिल करने में सहायता मिल रही है।

जहां तक विदेशी मुद्रा बाजार का संबंध है, सुधारों को अंतर्निहित विवेकपूर्ण सुरक्षा चक्रों सहित बाजार विकास पर केंद्रित किया गया था ताकि इस प्रक्रिया के दौरान बाजार अस्थिर न हो (रेड्डी, 2002)। वर्ष 1993 में बाजार आधारित विनिमय दर के दौर में कदम रखने तथा बाद में चालू खाता परिवर्तनीयता अपनाने की घटनाएं भारतीय विदेशी मुद्रा बाजार में सुधारों की दिशा में प्रमुख उपाय थे। बैंकों को विदेशी

बॉक्स III : सरकारी प्रतिभूति बाजार में सुधार

संस्थागत उपाय

- मूल्य निर्धारण के लिए सरकारी प्रतिभूतियों पर नियंत्रित ब्याज दरों के स्थान पर एक नीलामी प्रणाली की शुरूआत की गई।
- तदर्थ खजाना बिलों के माध्यम से राजकोषीय घाटे का स्वचालित मुद्रीकरण चरणबद्ध रूप से हटा दिया गया।
- सरकारी प्रतिभूति बाजार में प्राथमिक व्यापारियों को बाजार के कर्ताधर्ता के रूप में प्रवेश दिया गया।
- सरकारी प्रतिभूतियों के लेनदेन में पारदर्शिता सुनिश्चित करने के लिए सुपुर्दगी बनाम भुगतान निपटान प्रणाली की शुरूआत की गई।
- अल्पकालिक चलनिधि समायोजन के एक उपकरण के रूप में पुनर्खरीद समझौता (रेपो) की शुरूआत की गई। तदुपरांत चलनिधि समायोजन सुविधा (एल ए एफ) की शुरूआत की गई।
- चलनिधि समायोजन सुविधा रेपो एवं रिवर्स रेपो नीलामियों के जरिए कार्य करती है और अल्पकालिक ब्याज दर के लिए एक न्यूनता और उच्चतम दर सीमा उपलब्ध कराती है। चलनिधि समायोजन सुविधा एक दिवसीय बाजार में चलनिधि प्रबंधन तथा ब्याज दर के लिए एक सूचक उपकरण दोनों के रूप में उभरकर सामने आई है। नवंबर 2005 में द्वितीय चलनिधि समायोजन सुविधा (एस एल ए एफ) प्रारंभ की गई।
- बाजार स्थिरीकरण योजना (एम एस एस) की शुरूआत की गई है जिससे प्रणाली में स्थायी अतिरिक्त चलनिधि का प्रबंधन करने के लिए रिज़र्व बैंक के पास उपलब्ध लिखतों में विस्तार हुआ है।
- भारतीय रिज़र्व बैंक ने 1 अप्रैल 2006 से सरकारी पत्रों (प्रतिभूतियों) की प्राथमिक बाजार नीलामियों में भाग लेना बंद कर दिया है।
- बैंकों को प्राथमिक व्यापारी व्यवसाय करने की अनुमति दी गई है जबकि प्राथमिक व्यापारियों को अपने व्यवसाय के विविधीकरण करने की छूट दे दी गई है।
- एक चरणबद्ध तरीके से सरकारी प्रतिभूतियों में मंदड़िया बिक्री की अनुमति दी जा रही है जबकि 'जब जारी' बाजार के लिए हाल ही में दिशानिदेश जारी किए गए हैं।

सरकारी प्रतिभूति बाजार में लिखतों में वृद्धि

- चलनिधि का प्रबंधन करने तथा बेंच मार्किंग के लिए 91 - दिवसीय खजाना बिल की शुरूआत की गई। शून्य कूपन बाँड, अस्थायी दर वाले बाँड, पूंजी सूचकांकित बाँड जारी किए गए तथा शेयर बाजार में ट्रेड किए जाने वाले ब्याज दर फ्यूचर की शुरूआत की गई। आई आर एस / एफ आर ए जैसे काउंटर पर (ओटीसी) ब्याज दर डेरिवेटिव की शुरूआत की गई।
- ग़ैर स्वाधिकृत केंद्र सरकार दिनांकित प्रतिभूति की एकमुश्त बिक्री की अनुमति दी गई है जो कुछ शर्तों के अंतर्गत उसी लेनदेन दिवस के भीतर द्वितीयक बाजार से की गई एकमुश्त खरीद के द्वारा उसे कवर किया गया हो।
- द्वितीयक बाजार चलनिधि में सुधार लाने के लिए राज्य सरकार प्रतिभूतियों को रिपो का दर्जा दिया गया है।

सक्षमता प्रदायी उपाय

- कतिपय सीमाओं के अधीन विदेशी संस्थागत निवेशकों (एफ आई आई) को सरकारी प्रतिभूतियों में निवेश की छूट दी गई है।
- तयशुदा लेनदेन प्रणाली (एन डी एस) के माध्यम से सरकारी प्रतिभूतियों में स्वचालित स्क्रीन-आधारित लेनदेन की शुरूआत।
- भारतीय समाशोधन निगम लिमिटेड (सी सी आई एल) के माध्यम से सरकारी प्रतिभूतियों में जोखिम-मुक्त भुगतान तथा निपटान प्रणाली की स्थापना।
- तत्काल सकल भुगतान प्रणाली (आर टी जी एस) की चरणबद्ध शुरूआत।
- सरकारी प्रतिभूतियों के फुटकर व्यवसाय को बढ़ाना देने के लिए शेयर बाजार में इन प्रतिभूतियों के लेनदेने की शुरूआत, बैंकेतर संस्थाओं को रेपो बाजार में भागीदारी की अनुमति।
- हाल के उपायों में एन डी एस - ओ एम तथा टी + 1 निपटान संबंधी मानदंडों की शुरूआत शामिल है।

मुद्रा परिचालनों के लिए अधिक-से-अधिक स्वायत्तता दी जा रही है। विदेशी मुद्रा बाजार को गहन बनाने के लिए बड़ी संख्या में उत्पाद शुरू किए गए हैं तथा बाजार में नए खिलाड़ियों के प्रवेश की अनुमति दे दी गई है (बॉक्स IV) ।

अंत में, सुधारों का ढांचा इस प्रकार तैयार किया गया था कि सक्षमता से मूल्यों का पता लगाने की प्रक्रिया शुरू हो सके तथा बैंकिंग प्रणाली के भीतर संसाधनों के आबंटन में आंतरिक सक्षमता में वृद्धि को प्रेरित किया जा सके। 90 के दशक से पहले नीतिगत उपाय मूल रूप से वित्तीय क्षेत्र को गहन बनाने के प्रति समर्पित थे जबकि पिछले डेढ़ दशक के सुधारों का केंद्र बिंदु बैंकिंग प्रणाली में अधिक सक्षमता एवं उत्पादकता पैदा करना रहा है। मौद्रिक नीति के ढांचे में सुधारों का उद्देश्य रिज़र्व बैंक को परिचालनात्मक लचीलापन प्रदान करना था ताकि वह निष्क्रिय राजकोषीय मुद्रीकरण उत्पन्न अवरोध को शिथिल करते हुए मौद्रिक नीति का संचालन कर सके।

बॉक्स IV: विदेशी मुद्रा बाजार में सुधार

विनिमय दर व्यवस्था

- एकल मुद्रा निर्धारित - विनिमय दर प्रणाली से रुपये के मूल्य को मुद्रा-समूह के परिप्रेक्ष्य में निर्धारण और उसके आगे बाजार निर्धारित अस्थायी विनिमय दर की व्यवस्था तक विनिमय दर व्यवस्था का विकास।
- अंतरराष्ट्रीय मुद्रा कोष के समझौते के अनुच्छेदों के अनुच्छेद VIII की स्वीकृति के साथ चालू खाता लेन देनों के लिए रुपये की परिवर्तनीयता अपनाना। अनिवासियों के लिए वास्तविक रुप से संपूर्ण पूंजी खाता परिवर्तनीयता तथा निवासियों के मामले में पूंजी खाता प्रयोजन से किए गए लेन देनों का चरणबद्ध उदारीकरण।

संस्थागत ढांचा

- पहले के विदेशी मुद्रा विनियमन अधिनियम (फेरा), 1973 के स्थान पर बाजार अनुकूल विदेशी मुद्रा प्रबंधन अधिनियम, 1999। विभिन्न प्रयोजनों से विदेशी मुद्रा जारी करने के लिए भारतीय रिज़र्व बैंक द्वारा प्राधिकृत व्यापारियों (एडी) को काफी शक्तियों का प्रत्यायोजन।

विदेशी मुद्रा बाजार में लिखतों में वृद्धि

- रुपया-विदेशी मुद्रा स्वैप बाजार का विकास।
- विदेशी मुद्रा-रुपया विकल्पों जैसे अतिरिक्त प्रतिरक्षा (हेजिंग) लिखतों की शुरूआत। प्राधिकृत व्यापारियों को अंतरराष्ट्रीय विदेशी मुद्रा बाजार में क्रॉस सेलिंग आप्शन, ब्याज दर अदला-बदली (स्वैप) (आई आर एस) तथा मुद्रा स्वैप, कैप्स / कॉलर्स एवं वायदा दर करार (एफ आर ए) जैसे नवोन्मेषी उत्पादों का उपयोग करने की अनुमति।

उदारीकरण उपाय

- संबंधित बैंकों के निदेशक मंडलों के कतिपय निर्धारणों तथा अनुसमर्थन के अधीन प्राधिकृत व्यापारियों को लेनदेन शुरू करने, ओवरसीज बाजारों में से उधार लेने तथा वहां निवेश करने की अनुमति। कतिपय निर्धारणों के अधीन बैंकों को भी अनिवासी जमाराशियों पर ब्याज दर निर्धारित करने, परिसंपत्ति देयता प्रबंधन के लिए डेरिवेटिव उत्पादों का इस्तेमाल करने तथा विदेशी मुद्रा बाजार में एक दिवसीय आरंभिक राशि सीमाएं तथा अंतराल की सीमाएं तय करने की अनुमति दी गई है जो भारतीय रिज़र्व बैंक के अनुसमर्थन के अधीन होगी।
- निर्यातकों, विदेशों में निवेश करने वाले भारतीयों, विदेशी संस्थागत निवेशकों सहित विभिन्न प्रतिभागियों को विदेशी मुद्रा बाजार में वायदा कवर का उपयोग करने और बिना किसी सीमा के स्वैप लेनदेन करने की अनुमति जो वास्तविक आधार जोखिम के अधीन होगी।
- विदेशी संस्थागत निवेशकों तथा अनिवासी भारतीयों को विनिमय-लेन देन डेरेवेटिव संविदाओं में लेनदेन की अनुमति जो कतिपय शर्तों के अधीन होगी।
- विदेशी मुद्रा अर्जकों को विदेशी मुद्रा खाते रखने की अनुमति। निवासियों को प्रतिवर्ष 25,000 अमेरिकी डॉलर की सामान्य सीमा के भीतर इस प्रकार के खाते खोलने की अनुमति है।

III. वित्तीय क्षेत्र तथा मौद्रिक नीति में सुधार : मूल्यांकन

बैंकिंग क्षेत्र

बैंकिंग क्षेत्र के एक मूल्यांकन से यह जाहिर होता है कि बैंकों ने सुधारों के बाद परिचालनात्मक लचीलेपन के माहौल में सशक्त तुलन पत्र वृद्धि का अनुभव किया है। पूंजी पर्याप्तता तथा परिसंपत्ति की गुणवत्ता में सुधार के रूप में बैंकों की वित्तीय स्थिति में सुधार स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होता है। यह उल्लेखनीय है कि यह प्रगति विवेकपूर्ण मानदंडों के संदर्भ में अंतरराष्ट्रीय प्रथाएं अपनाने के बावजूद हासिल हुई है। अति सक्रिय प्रौद्योगिकीय पहल तथा उदार मानव संसाधन प्रबंधन के कारण प्रतिस्पर्धात्मक एवं उत्पादक उपलब्धियां हुई हैं। इन महत्वपूर्ण लाभों को, सामाजिक बैंकिंग जैसे बैंकिंग प्रणाली की व्यापक पहुंच कायम करने तथा ऋणों को महत्वपूर्ण परंतु समाज के वंचित तबकों की दिशा में मोड़ने, के अपने लक्ष्यों को नए ढंग से निर्धारित करते हुए, हासिल किया गया है। सुधार की प्रक्रिया से गुजरते हुए बैंकिंग क्षेत्र के कार्यनिष्पादन पर एक संक्षिप्त चर्चा नीचे प्रस्तुत है।

बैंकिंग का विस्तार

शाखाओं के विस्तार एवं ऋण तथा जमाराशियों में वृद्धि से निष्कर्ष निकालने पर बैंकिंग प्रणाली की व्यापक पहुंच वित्तीय क्षेत्र गहनता के जारी रहने की ओर संकेत करती है (सारणी 1)। 1980 के दशक से प्रति बैंक के दायरे में आनेवाली आबादी में बहुत परिवर्तन नहीं हुआ है और यह लगभग 16,000 तक सीमित बनी हुई है।

सुधारों के बाद की अवधि से बैंकों ने अपनी परिसंपत्तियों एवं देयताओं में वृद्धि की उच्च दर लगातार बनाए रखी है। देयताओं की ओर देखा जाए तो जमाराशियां कुल देयताओं के लगभग 80 प्रतिशत के बराबर बनी हुई हैं। परिसंपत्ति की ओर देखा जाए तो एक तरफ ऋणों एवं अग्रिमों के हिस्से तथा दूसरी तरफ निवेशों के कई चक्र पूरे हो चुके हैं जिससे बैंकों की संविभाग वरीयताएं एवं अर्थव्यवस्था में वृद्धि के चक्र प्रतिबिंबित होते हैं। निवेश की मांग में मंदी तथा विवेकपूर्ण मानदंडों के सख्त होने के फलस्वरुप 90 के दशक के दूसरे चरण में ऋण तथा अग्रिमों के हिस्से में कमी हुई। पिछले 3-4 वर्षों में निवेश

सारणी 1 : भारत में वाणिज्यिक बैंकिंग का विकास

(करोड़ रु.)

	1969	1980	1991	1995	2000	2005
1	2	3	4	5	6	9
1. वाणिज्यिक बैंकों की संख्या	73	154	272	284	298	288
2. बैंक कार्यालयों की संख्या	8,262	34,594	60,570	64,234	67,868	68,339
जिसमें						
ग्रामीण और अर्द्धशहरी बैंक कार्यालय	5,172	23,227	46,550	46,602	47,693	47,491
3. प्रति कार्यालय जनसंख्या (000s)	64	16	14	15	15	16
4. प्रति व्यक्ति जमा (रु.)	88	738	2,368	4,242	8,542	16,699
5. प्रति व्यक्ति ऋण (रु.)	68	457	1,434	2,320	4,555	10,135
6. प्राथमिक क्षेत्र के अग्रिम (प्रतिशत)	15	37	39	34	35	40
7. जमा (राष्ट्रीय आय का प्रतिशत)	16	36	48	48	54	65

स्रोत : भारतीय रिज़र्व बैंक।

की मांग में पुनः तेजी आने से बैंकों के ऋण संविभाग में तीव्र वृद्धि देखी गई है। तदनुसार, पिछले एक वर्ष में सरकारी प्रतिभूतियों में बैंकों के निवेश में उल्लेखनीय गिरावट देखी गई है हालांकि यह अब भी न्यूनतम सांविधिक अपेक्षा से ऊपर है। इस प्रकार, जहां 90 के दशक में अधिक निवेश एवं ऋण जोखिम के प्रति उदासीनता के कारण बैंक वित्तीय मध्यस्थता जैसे जमाराशियां स्वीकार करना एवं ऋण देने, मुख्य कार्यों से दूर भागते रहे। वहीं हाल के वर्षों में ऐसा प्रतीत होता है कि उन्होंने निवेश और ऋण एवं अग्रिमों के बीच अधिक संतुलन कायम किया है। हाल के वर्षों में वसूली के सुधरे हुए वातावरण में बैंक ऋण देने की दिशा में अधिक प्रयास करने के प्रति प्रेरित हुए हैं।

पूंजी की स्थिति एवं परिसंपत्ति की गुणवत्ता

सुधारों की शुरूआत से ही कुछ सूक्ष्म विवेकेकपूर्ण उपाय निर्धारित किए गए हैं जो बैंकिंग प्रणाली को मजबूती देने तथा सुरक्षा सुनिश्चित करने पर केंद्रित हैं। विवेकपूर्ण अपेक्षाओं के संबंध में, अंतरराष्ट्रीय सर्वश्रेष्ठ प्रथाओं के निकट पहुँचने के लिए आय निर्धारण तथा परिसंपत्ति वर्गीकरण (आई आर ए सी) संबंधी मानदंडों को सुदृढ़ किया गया है। प्रारंभ में जहां चरणबद्ध तरीके से 8 प्रतिशत सी आर ए आर हासिल करना स्वीकार किया गया था, वहीं बाद में 1999-2000 से इन्हें बढ़ाकर 9 प्रतिशत कर दिया गया।

सुधारों की अवधि के दौरान वाणिज्यिक बैंकों ने संपूर्ण पूंजीगत स्थिति में उल्लेखनीय रुप से सुधार दर्ज किया गया (सारणी 2)। उदाहरणस्वरूप, मार्च 2005 के अंत में भारत में कार्यरत 88 वाणिज्यिक बैंकों में से 86 बैंकों ने अपने सी आर ए आर का स्तर 9 प्रतिशत पर या उससे अधिक बनाए रखा। वर्ष 1995-96 के लिए यही आंकड़ा 92 बैंकों में से 54 बैंकों का था। प्रारंभ में सार्वजनिक क्षेत्र के बैंकों की पुनर्पूंजीकरण के लिए सरकार द्वारा दी गई काफी मात्रा में निधि के माध्यम से बैंकों की पूंजी में सुधार किया गया। तदुपरांत बजटीय प्रभाव को कम करने तथा बाजार अनुशासन लागू करने के लिहाज से सार्वजनिक क्षेत्र के बैंकों को इक्विटी जारी करके बाजार से निधियां जुटाने की अनुमति दी गई बशर्ते उनमें 51 प्रतिशत सार्वजनिक स्वामित्व बनाए रखा जाए। सार्वजनिक क्षेत्र के बैंकों में स्वामित्व अब काफी बहुआयामी हो चुका है। मार्च 2005 के अंत की स्थिति के अनुसार छः बैंकों में सामान्य जनता की शेयर पूंजी 40 से 49 प्रतिशत के बीच एवं 12 बैंकों में 30 से 49 प्रतिशत के बीच थी। केवल चार बैंकों में सरकार की शेयर पूंजी 90 प्रतिशत से अधिक थी।

कड़े मानदंड़ों के बावजूद, बैंकों की परिसंपत्ति गुणवत्ता में उल्लेखनीय सुधार हुआ है। वर्ष 2004 में भारत 90 दिवसीय अनर्जक ऋण (एन पी एल) निर्धारण मानदंड (180 दिवसीय मानदंड से) के दौर में प्रवेश कर गया। तब भी, कुल अग्रिमों तथा आस्तियों के अनुपात के रूप में अनर्जक ऋणों में 90 के दशक के मध्य से काफी एवं लगातार गिरावट हुई है (सारणी 3)। ऋण मूल्यांकन प्रक्रिया में सुधार, व्यापार चक्र में उर्ध्वगति, अनर्जक ऋणों के समाधान के लिए नए प्रयासों [वित्तीय परिसंपत्तियों के प्रतिभूतिकरण एवं पुनर्निर्माण तथा प्रतिभूति ब्याज प्रत्यावर्तन (सरफेसाई) अधिनियम सहित] तथा अधिक लाभप्रदता के

सारणी 2 : जोखिम भारित पूंजी पर्याप्तता के अनुसार वाणिज्यिक बैंकों का वितरण

(बैंकों की संख्या)

वर्ष	4 प्रतिशत से कम	4-9 प्रतिशत * के बीच	9-10 प्रतिशत @ के बीच	10 प्रतिशत से ऊपर	कुल
1	2	3	4	5	6
1995-96	8	9	33	42	92
2000-01	3	2	11	84	100
2004-05	1	1	8	78	88

* : 1999-2000 के पहले 4-8 प्रतिशत से संबंधित।

@ : 1999-2000 से पहले 8-10 प्रतिशत से संबंधित।

स्रोत : भारतीय रिज़र्व बैंक

सारणी 3 : अनुसूचित वाणिज्यिक बैंकों के अनर्जक ऋण (एनपीएल)

(प्रतिशत)

	सकल एनपीएल / अग्रिम	सकल एनपीएल / आस्तियां	निवल एनपीएल/ अग्रिम	निवल एनपीएल/ आस्तियां
1	2	3	4	5
1996-97	15.7	7.0	8.1	3.3
1997-98	14.4	6.4	7.3	3.0
1998-99	14.7	6.2	7.6	2.9
1999-00	12.7	5.5	6.8	2.7
2000-01	11.4	4.9	6.2	2.5
2001-02	10.4	4.6	5.5	2.3
2002-03	8.8	4.0	4.4	1.9
2003-04	7.2	3.3	2.9	1.2
2004-05	5.2	2.6	2.0	0.9

स्रोत : भारतीय रिज़र्व बैंक।

फलस्वरूप अनर्जक ऋणों के अधिक प्रावधानीकरण एवं बट्टा खाते डालने के कारण अनर्जक ऋणों में क्रमिक रूप से कमी आई है।

प्रतिस्पर्धा एवं दक्षता

निजी क्षेत्र के नए बैंकों से लेकर अनेक विदेशी बैंकों के प्रवेश एवं विस्तार के माध्यम से प्रतिस्पर्धा को बढ़ाकर बैंकों की दक्षता एवं उत्पादकता में वृद्धि करने के उद्देश्य के अनुरूप, वाणिज्यिक बैंकों की कुल परिसंपत्तियों में सार्वजनिक क्षेत्र के बैंकों के हिस्से में लगातार गिरावट हुई है। इस प्रकार के परिवर्तन के बावजूद परिसंपत्तियों तथा आय का लगभग तीन-चौथाई हिस्सा सार्वजनिक क्षेत्र के बैंकों का है। सार्वजनिक क्षेत्र के बैंकों ने भी प्रतिस्पर्धा से उत्पन्न नई चुनौतियों के जवाब में कार्रवाई की है जैसा कि बैंकिंग क्षेत्र के संपूर्ण लाभ में उनकी बढ़ी हुई हिस्सेदारी से प्रतिबिंबित होता है। इससे यह पता चलता है कि परिचालनात्मक उदारता के कारण सार्वजनिक क्षेत्र के बैंक निजी क्षेत्र के बैंकों एवं विदेशी बैंकों से अपेक्षाकृत प्रभावी ढंग से प्रतिस्पर्धा कर रहे हैं। सार्वजनिक क्षेत्र के बैंक का प्रबंधन अब शायद अपनी गतिविधियों

सारणी 4 : बैंक समूहवार हिस्सा : चुनिंदा

(प्रतिशत)

	.1995-96	2000-01	2004-05
1	2	3	4
सार्वजनिक क्षेत्र के बैंक			
आय	82.5	78.4	75.6
व्यय	84.2	78.9	75.8
कुल आस्तियां	84.4	79.5	74.4
निवल लाभ	-39.1	67.4	73.3
सकल लाभ	74.3	69.9	75.9
नए निजी क्षेत्र के बैंक			
आय	1.5	5.7	11.8
व्यय	1.3	5.5	11.4
कुल आस्तियां	1.5	6.1	12.9
निवल लाभ	17.8	10.0	15.0
सकल लाभ	2.5	6.9	10.7
विदेशी बैंक			
आय	9.4	9.1	7.0
व्यय	8.3	8.8	6.6
कुल आस्तियां	7.9	7.9	6.8
निवल लाभ	79.8	14.8	9.7
सकल लाभ	15.6	15.7	9.0

स्रोत : भारतीय रिज़र्व बैंक।

से उपजे बाजारगत परिणामों के साथ बेहतर तालमेल की स्थिति में है (मोहन, 2000 ए)। बैंकिंग प्रणाली की कुल आय तथा परिसंपत्तियों में भारत के निजी क्षेत्र के बैंकों विशेष रूप से 90 के दशक में स्थापित निजी क्षेत्र के नए बैंकों की हिस्सेदारी में 90 के दशक के मध्य से काफी सुधार हुआ है (सारणी 4)। तथापि, विदेशी बैंकों के परिसंपत्ति हिस्से में कमी का आंशिक कारण उनके द्वारा तुलन-पत्रेतर ग़ैर निधिकृत व्यापार पर अधिक ध्यान केंद्रित किया जाना है।

दक्षता संबंधी लाभ कुल परिसंपत्तियों के अनुपात के रूप में परिचालनात्मक व्यय को सीमित करने में भी परिलक्षित होते हैं (सारणी 5)। यह उपलब्धि, भारतीय बैंकों द्वारा सूचना प्रौद्योगिकी के स्थापन और उन्नयन पर किए

सारणी 5 : अनुसूचित वाणिज्यिक बैंकों की आय और व्यय

(बिलियन रु.)

वर्ष	कुल आस्तियां	कुल आय	ब्याज आय	कुल व्यय	ब्याज व्यय	स्थापना गत व्यय	निवल ब्याज आय
1	2	3	4	5	7	8	9
1969	68	4 (6.2)	4 (5.3)	4 (5.5)	2 (2.8)	1 (2.1)	2 (2.5)
1980	582	42 (7.3)	38 (6.4)	42 (7.2)	27 (4.7)	10 (1.7)	10 (1.8)
1991	3,275	304 (9.3)	275 (8.4)	297 (9.1)	190 (5.8)	76 (2.3)	86 (2.6)
2000	11,055	1,149 (10.4)	992 (9.0)	1,077 (9.7)	690 (6.2)	276 (2.5)	301 (2.7)
2005	22,746	1,867 (8.2)	1,531 (6.7)	1,660 (7.3)	866 (3.8)	491 (2.2)	665 (2.9)

टिप्पणी : कोष्ठक में दिए गए आंकड़े कुल आस्तियों की तुलना में अनुपात हैं।

स्रोत : भारतीय रिज़र्व बैंक।

गए भारी व्यय तथा सार्वजनिक क्षेत्र के बैंकों के मामले में, उनके द्वारा अपने कुल कर्मचारियों की संख्या के लगभग 12 प्रतिशत को स्वैच्छिक समय-पूर्व सेवानिवृत्ति देने पर किए गए भारी खर्च के बावजूद हुई है।

बैंकिंग प्रणाली की दक्षता में सुधार अन्य बातों के साथ-साथ उसकी मध्यस्थता लागत में भी प्रदर्शित होती है जो कुल परिसंपत्तियों की तुलना में परिचालन खर्च के अनुपात के रूप में परिभाषित की गई है और जिसमें सुधारों के बाद के दौर में विदेशी बैंकों को छोड़कर सभी बैंक समूहों में क्रमिक रूप से कमी पाई गई (सारणी 6)। तथापि, भारत बैंकों में मध्यस्थता लागत विकसित देशों की तुलना में अभी भी अधिक है। इसी प्रकार, भारतीय बैंकों का लागत आय-अनुपात (जिसे परिचालन खर्च एवं ब्याज खर्च घटाकर कुल आय के अनुपात के रूप में परिभाषित किया गया है) में सुधारों के बाद के दौरान गिरावट की प्रवृत्ति देखी गई है। उदाहरण के लिए, भारतीय बैंकों ने 2004 में अपनी निवल आय का लगभग 45 प्रतिशत श्रम तथा भौतिक पूंजी का प्रबंधन करने पर भुगतान किया जबकि 1993 में यह लगभग 72 प्रतिशत था (मोहन, 2006 ए)। इस प्रकार सुधारों के बाद की अवधि के दौरान भारतीय बैंकों ने अपनी निवल आय का लगभग 27 प्रतिशत निवल लागत बचत के रूप में दर्ज किया।

उत्पादकता

विभिन्न उत्पादकता सूचकांकों के मद्देनजर जो तथ्य सर्वाधिक उत्साहवर्धक है, वह भारतीय बैंकिंग प्रणाली की उत्पादकता में महत्वपूर्ण सुधार है। भारतीय बैंकों का प्रति कर्मचारी व्यापार 1992 में 5.4 मिलियन रुपए के मुकाबले 2005 में तीन गुना बढ़कर 17.3 मिलियन रुपए हो गया जो 9 प्रतिशत से अधिक की वार्षिक चक्रवृद्धि दर को प्रदर्शित करता है (सारणी 7)। इसी अवधि के दौरान प्रति कर्मचारी मुनाफा 20,000 रुपए से बढ़कर 130,000 रुपए हो गया जो लगभग 15.3 प्रतिशत चक्रवृद्धि को दर्शाता है। इसी के साथ शाखाओं की उत्पादकता में भी सुधार दर्ज किया गया। इन सुधारों के पीछे दो प्रेरक कारक थे *प्रौद्योगिकीय सुधार* जिससे उत्पादन की संभावनाओं का विस्तार होता है और *प्रतिस्पर्धा का प्रभाव* जिससे पीयर दबाव पड़ने के कारण अपनी उत्पादकता स्तर ऊंचा उठाने के लिए बाध्य होते हैं। यहां निजी क्षेत्र के नए बैंकों द्वारा अपनाए गए कारोबार व्यवहार की नई भूमिका, नए दृष्टिकोण तथा कारोबार का विस्तार सर्वाधिक महत्वपूर्ण रहे हैं।

सारणी 6: अनुसूचित वाणिज्यिक बैंकों की मध्यस्थता लागत*: 1196-2005

(as percentage to total asset)

वर्ष (मार्च-अंत)	सार्वजनिक क्षेत्र के बैंक	नए निजी क्षेत्र के बैंक	विदेशी बैंक	सभी अनुसूचित वाणिज्यिक बैंक
1	2	3	4	5
1996	2.99	1.82	2.78	2.94
1997	2.88	1.94	3.04	2.85
1998	2.66	1.76	2.99	2.63
1999	2.65	1.74	3.40	2.65
2000	2.52	1.42	3.12	2.48
2001	2.72	1.75	3.05	2.64
2002	2.29	1.12	3.03	2.19
2003	2.25	1.95	2.79	2.24
2004	2.20	2.02	2.76	2.20
2005	2.03	2.06	2.85	2.09

* मध्यस्थता लागत : परिचालनगत व्यय।

स्रोत : भारिबैं के विभिन्न वर्षों के भार में बैंकों से संबंधित सांख्यिकी सारणियों से गणना की गई।

सारणी 7: अनुसूचित वाणिज्यिक बैंकों के चुनिंदा उत्पादकता संकेतक

(1193-94 की कीमतों पर मिलियन रु.)

वर्ष	प्रति कर्मचारी कारोबार	प्रति कर्मचारी लाभ	प्रति शाखा कारोबार
1	2	3	4
1992	5.4	0.02	109.9
1996	6.0	0.01	119.6
2000	9.7	0.05	179.4
2005	17.3	0.13	267.0

स्रोत : भा.रि.बैंक के विभिन्न निर्गमों में भारत में बैंकों से संबंधित सांख्यिकीय सारणियां ।

मौद्रिक नीति

मौद्रिक नीति का प्रभाव क्या रहा? मौद्रिक नीति के प्रभाव के असंख्य आयामों के दृष्टिकोण से मैं कुछ चुनिंदा तत्वों पर विचार केंद्रित करना चाहूँगा।

मुद्रास्फीति

मौद्रिक नीति का मूल्यांकन करते समय इस बात पर जोर देकर कहना तर्कसंगत होगा कि सुधारों के बाद के दौर में मौद्रिक नीति अपने प्रमुख उद्देश्यों को पूरा करने में काफी सफल रही है। अभी पिछले 90 के दशक में मुद्रास्फीति में विश्व्यापी गिरावट हुई और भारत में भी ऐसा ही हुआ। बीते दशक में मुद्रास्फीति औसतन पांच प्रतिशत रही जो पिछले चार दशकों में आठ प्रतिशत से उल्लेखनीय रूप से कम रही (चार्ट 1)। नब्बे के दशक के प्रारंभ से मौद्रिक-राजकोषीय इंटरफेस में सुधार तथा सरकारी प्रतिभूति बाजार में सुधारों सहित संरचनात्मक सुधारों के कारण 90 वे दशक के दूसरे चरण से मौद्रिक प्रबंधन बेहतर हुआ। इससे महत्वपूर्ण बात यह है कि इसके बाद कम एवं स्थिर मुद्रास्फीति के दौर में मुद्रास्फीति की अपेक्षाएं स्थिर हो गईं तथा अर्थव्यवस्था में मुद्रास्फीतिक सहनशक्ति कम हो गई। यह उत्साहपूर्वक उल्लेखनीय किया जा सकता है कि अंतरराष्ट्रीय कच्चे तेल की रिकार्डतोड़ ऊंची कीमतों के बावजूद मुद्रास्फीति कम बनी रही तथा मुद्रास्फीति की प्रत्याशाएं भी स्थिर बनी रहीं। चूंकि मुद्रास्फीतिक प्रत्याशाएं वास्तविक मुद्रास्फीति प्रतिफल का प्रमुख निर्धारक तत्व हैं और यदि मौद्रिक प्रसार में कमियों को छोड़ दिया जाए तो हम मुद्रास्फीति की प्रत्याशाओं को

चार्ट 1 : भारत में थोक मूल्य मुद्रा स्फीति

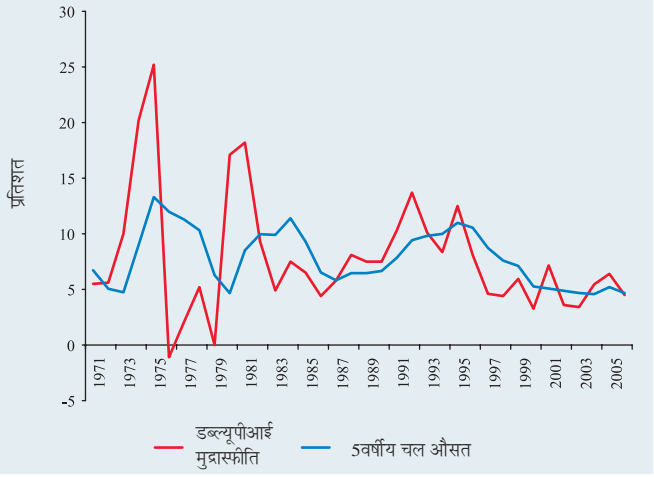

स्थिर रखने के लिए ऐतिहाती उपाय कर रहे हैं। [2] जैसा कि इस पर नीचे चर्चा की गई है, चलनिधि स्थितियों को व्यवस्थित करने के लिए मौजूदा तथा नए दोनों ही प्रकार के अनेक लिखतों का प्रयोग किया गया था ताकि अभीष्ट उद्देश्यों को प्राप्त किया जा सके। इस कम तथा स्थिर मुद्रास्फीति का वातावरण बनाने में बढ़ी हुई प्रतिस्पर्धा, उत्पादकता संबंधी लाभ तथा मजबूत कंपनी तुलनपत्र जैसे अनेक अन्य कारकों का भी योगदान रहा है लेकिन ऐसा प्रतीत होता है की नपेतुले मौद्रिक उपायों ने भी इसी प्रकार भूमिका अदा की थी।

भारी मात्रा में पूंजी के अंर्तप्रवाह के कारण उत्पन्न चुनौतियां

यह उल्लेख करना उपयुक्त है कि नब्बे दशक के मध्य से मुद्रास्फीति को भारी मात्रा में पूँजी के अंर्तप्रवाह के कारण उत्पन्न चुनौतियों के बावजूद सीमित किया जा सका था। बाह्य क्षेत्र में सुधारों के बाद विदेशी निवेश प्रवाह को भी प्रोत्साहन मिला है। भारतीय अर्थव्यवस्था की सशक्त वृद्धि की संभावनाओं को प्रस्तुत करते हुए 1993-94 से देश को भारी निवेश अंतर्वाह, प्रत्यक्ष तथा पोर्टफोलियो प्राप्त हुए हैं जिसकी तुलना में नब्बे के दशक के प्रारंभ तक इनका स्तर नगण्य था। वर्ष 2005-06 के दौरान (अप्रैल-फरवरी) कुल विदेशी निवेश प्रवाह (प्रत्यक्ष तथा समविभाग) 1990-91 में 111 मिलियन अमरीकी डालर से बढ़ कर 17,496 मिलियन अमरीकी डालर हो गया। इसी अवधि के दौरान चालू खाता घाटा 1991-92 से औसतन सकल घरेलू उत्पाद के एक प्रतिशत तक कम बना रहा और वास्तव में 2001-04 के दौरान इसमें थोड़ी मात्रा में अतिरिक्त वृद्धि हुई। चालू वित्त पोषण की आवश्यकताओं से अधिक पूंजी प्रवाह के कारण संपूर्ण भुगतान संतुलन में लगातार अतिरिक्त वृद्धि दर्ज हुई जिससे आरक्षित निधि में वृद्धि हुई। आरक्षित निधि में इस प्रकार की भारी वृद्धि के बावजूद मुद्रास्फीति को सीमित रखा जा सका जो रिज़र्व बैंक तथा सरकार द्वारा नीतिगत रूप से किए गए समुचित उपायों प्रदर्शित करती है।

लगभग 4 दशकों से भुगतान संतुलन की पुरानी समस्याओं का अनुभव करने के बाद नब्बे दशक के मध्य से आरक्षित निधियों में निरंतर तथा भारी मात्रा में वृद्धि के लिए जिम्मेदार अतिरिक्त विदेशी मुद्रा का प्रार्दुभाव भारत के लिए एक नया अनुभव रहा है। विदेशी मुद्रा में अधिशेष चालू खाता खोलने, व्यापार सुरक्षा में कमी तथा नब्बे दशक के प्रारंभ से मध्य तक पूंजी खाते को आंशिक रुप से खोलने के बाद बढ़ना शुरू हुआ। 1992-93 से व्यवहारिक रुप में विनिमय दर को लचीला बनाना नीतिगत उपाय का एक महत्वपूर्ण हिस्सा रहा है जो पूंजी प्रवाह का प्रबंधन करने के लिए जरूरी था।

नब्बे दशक के मध्य से भारत के भुगतान संतुलन में महत्वपूर्ण परिवर्तन हुआ है। चालू खाते में, सॉफ्टवेअर के निर्यात तथा उस हाल में व्यापार प्रक्रिया के आउटसोर्सिंग के निर्यात में वृद्धि के कारण सेवा निर्यातों के हिस्से में सतत आधार पर वृद्धि हुई है। इससे अधिक महत्वपूर्ण वृद्धि अनिवासी भारतीयों (एन आर आई) द्वारा विप्रेषणों में हुई है जो अब सकल घरेलू उत्पाद का लगभग 3 प्रतिशत है। इससे काफी अधिक स्थिरता प्रकट होती है। विप्रेषणों में मुख्य रुप से रख-रखाव प्रवाह शामिल लगते हैं जिस पर विनिमय दर, मुद्रास्फीति अथवा वृद्धि दर परिवर्तनों का कोई प्रभाव नहीं पड़ने वाला है। इस प्रकार, वाणिज्यिक वस्तुओं के व्यापार घाटे की मौजूदगी के बावजूद भारत के चालू खाते में थोड़ा घाटा या अधिशेष ही दिखाई पड़ता है जबकि व्यापार घाटा 90 के दशक के मध्य में सकल घरेल उत्पाद के 3.2 प्रतिशत के मुकाबले 2004-05 में बढ़कर 5.3 प्रतिशत हो गया है। पूंजी खाते में, अन्य उभरते हुए बाजारों के विपरीत भारत में हाल के वर्षों में संविभाग प्रवाह विदेशी प्रत्यक्ष निवेश से काफी अधिक हो गया है। अधिकारिक तथा वाणिज्यिक ऋण, एन आर आई जमाराशियों तथा अन्य बैंकिंग पूंजी सहित अन्य पूंजी प्रवाह से युग्मित निवल पूंजी प्रवाह का अब सकल घरेलू उत्पाद में लगभग 4.4 प्रतिशत हिस्सा हो गया है।

इस दशक के प्रारंभिक दौर में भारतीय व्यवसाय का चक्र उलट जाने के कारण चालू खाते में अतिरिक्त आय की प्राप्ति विशेषकर तुलनात्मक विनिमय दर से अप्रभावित विप्रेषण प्रवाह के कारण हुई। परिणामस्वरूप अप्रैल 2000 तथा अप्रैल 2006 के बीच विदेशी मुद्रा भंडार में 120 बिलियन अमरिकी डालर से अधिक वृद्धि हुई।

इन प्रवाहों के प्रबंधन के पीछे अनेक नीतिगत उपायों का हाथ था जिसकी नजर वित्तीय स्थिरता के साथ ब्याज दर, चलनिधि प्रबंधन तथा स्वस्थ वित्तीय बाजार परिस्थितियों से संबंधित मौद्रिक नीति के उद्देश्यों

[2] रिज़र्व बैंक ने अक्तूबर 2004 से अपनी प्रमुख नीति दर-रिवर्स रेपो दर को चरणों में 100 आधार अंक बढ़ाया है।

तथा आरक्षित निधि के स्तर पर टिकी रही। नियंत्रण से जुड़े फैसलों के लिए अतिरिक्त विदेशी मुद्रा प्रवाह की प्रकृति की परख करने के विवेक की जरुरत होती है - कि क्या वे टिकाऊ, अर्द्ध-टिकाऊ या अस्थिर हैं। यह विवेक स्वयं वास्तविक अर्थव्यवसथा तथा वित्तीय क्षेत्र के घटनाक्रम के मूल्यांकन पर आधारित होता है। इसके अतिरिक्त, किसी खास समय में कुछ प्रवाह स्थाई प्रकार के हो सकते हैं जबकि कुछ अल्पकालिक प्रकार के और इस प्रकार दोनों उलट-पुलट सकते हैं।

परिचालनात्मक आधार पर खुले बाजार परिचालनों (ओ एम एस) के माध्यम से नियंत्रण परिचालनों में टिकाऊ प्रवाहों पर ध्यान दिया जाना चाहिए जबकि दूसरी ओर अस्थिर प्रवाहों का प्रबंधन चलनिधि समायोजन सुविधा (एलएएफ) के सामान्य प्रकार के दैनिक परिचालनों के जरिए किया जा सकता है।

तथापि, वर्ष 2003-04 तक रिज़र्व बैंक द्वारा धारित सरकारी प्रतिभूतियों के सीमित भंडार के कारण नियंत्रण परिचालन बाधित होने लगे थे। स्वयं अपने पत्र जारी करने पर रिज़र्व बैंक पर लगे कानूनी प्रतिबंधों के कारण भी भावी नियंत्रण परिचालनों में अवरोध पैदा हो गया। तदनुसार, अप्रैल 2004 में बाजार स्थिरीकरण योजना (एम एस एस) के रूप में एक नवोन्मेषी योजना प्रारंभ की गई जिसके तहत स्थाई अतिरिक्त चलनिधि को खपाने के लिए भारत सरकार द्वारा दिनांकित प्रतिभूतियां / खजाना हुंडियां जारी की जा रही हैं। ये दिनांकित प्रतिभूतियां / खजाना हुंडियां ठीक वहीं हैं जिन्हें सामान्य बाजार उधार लेने के लिए जारी किया जाता है और यह बाजार को खंडों में विभक्त होने से बचाता है। इसके अतिरिक्त, निरोधक परिचालनों से जुड़ी कीमतों के संबंध में बाजार स्थिरीकरण योजना के कारण पारदर्शिता आती है। अभी तक शुरूआती तौर पर निरोधक परिचालनों की कीमतों का पूरा वहन रिज़र्व बैंक द्वारा किया जाता था और उसके प्रभाव को निम्न लाभ अंतरणों के रूप में सरकार को भेज दिया जाता था। बाजार स्थिरीकरण योजना शुरू हो जाने के बाद ब्याज भुगतान की कीमतों का वहन स्वयं सरकार द्वारा एक पारदर्शी तरीके से किया जाएगा।

यह उल्लेख करना प्रासंगिक होगा कि बाजार स्थिरीकरण योजना ने रिज़र्व बैंक को न केवल लचीला बनाया है कि वह चलनिधि को खपा सके बल्कि जरूरत पड़ने पर चलनिधि उपलब्ध भी करा सके। वर्ष 2005-06 की दूसरी छःमाही के दौरान यह प्रमाणित हो गया था जब ऋण की तगड़ी मांग, रिज़र्व बैंक में सरकार के अतिरिक्त धन में इजाफा तथा भारतीय सहस्राब्दि जमा के विराट भुगतान के कारण धन की निकासी (लगभग 7 बिलियन डॉलर) के चलते चलनिधि के हालात सख्त हो गए थे। इन परिस्थितियों के मद्देनजर नवंबर 2005 तथा अप्रैल 2006 के बीच बाजार स्थिरीकरण योजना के अंतर्गत नए निर्गमों को स्थगित कर दिया गया था। पहले जारी की गई प्रतिभूतियों / हुंडियों के भुगतान सहित चलनिधि समायोजन सुविधा के अंतर्गत रेपो / रिवर्स रेपो

चार्ट 2 : चलनिधि प्रबंधन

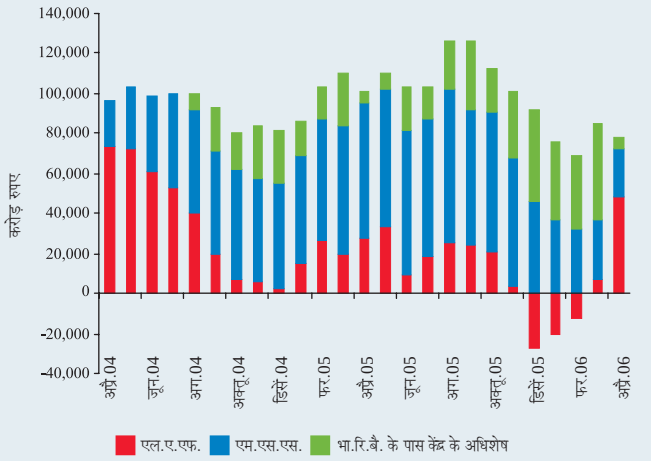

परिचालनों के जरिए चलनिधि के सक्रिय प्रबंधन का नतीजा था कि बाजार को चलनिधि उपलब्ध हो सकी तथा वित्तीय बाजारों को स्थिरता हासिल हो सकी (चार्ट 2)। चलनिधि के हालात में सुधार होने के बाद मई 2006 से बाजार स्थिरीकरण योजना के तहत पुनः प्रतिभूतियां जारी करने का निर्णय लिया गया। इस प्रकार बाजार स्थिरीकरण योजना के तहत प्रतिभूतियां जारी करने से रिज़र्व बैंक प्रणाली में चलनिधि प्रबंधन में सुधार, विदेशी मुद्रा बाजार में स्थिरता तथा निर्धारित लक्ष्यों के अनुरूप मौद्रिक नीति को संचालित कर सका।

भारतीय अनुभव दूसरी उभरती हुई अर्थव्यवस्थाओं के लिए इस जरूरत को प्रमुखता से रेखांकित करता है कि वे विनिमय दरों में अधिक लचीलापन लाएं लेकिन प्राधिकारियों को इस क्षमता का भी लाभ मिल सकता है कि वे अंतरराष्ट्रीय पूंजी प्रवाह में देखी गई अस्थिरता के मद्देनजर विदेशी मुद्रा बाजारों में हस्तक्षेप कर सकें। इससे एक मुख्य सबक यह मिलता है कि विकासशील देशों में विनिमय दर के प्रबंधन तथा उनकी मौद्रिक नीतियों में लचीलेपन एवं व्यावहारिकता के तत्वों का समावेश अनिवार्य है न कि सख्त सैद्धांतिक नियमों से आसक्ति का।

भारत के एक मुक्त अर्थव्यवस्था में पदार्पण की तीन सबसे बड़ी विशेषताएं हैं। प्रथम, नियंत्रित विनिमय दर बाजार द्वारा निर्धारित हो गई तथा विदेशी मुद्रा बाजार में व्यवस्थित परिस्थितियां सुनिश्चित करना विनिमय दर प्रबंधन का एक लक्ष्य बन गया। द्वितीय, जैसा कि पहले ही उल्लेख किया जा चुका है, पूंजी प्रवाह में उतार-चढ़ाव से मौद्रिक नीति के संचालन पर प्रभाव पड़ने लगा। तृतीय, भुगतान संतुलन के संकट ने इस जरूरत को प्रमुखता से रेखांकित किया कि विदेशी मुद्रा भंडार का एक पर्याप्त स्तर बनाए रखा जाए और इसके परिणामस्वरूप मौद्रिक नीति का संचालन मजबूत और बाधित दोनों हुआ। पीछे से देखा जाए तो ऐसा प्रतीत होता है कि इस रणनीति का लाभ मिला है और विनिमय दर में दो-तरफा तर्कसंगत गति आ गई (चार्ट 3)।

चार्ट 3: विनिमय दर

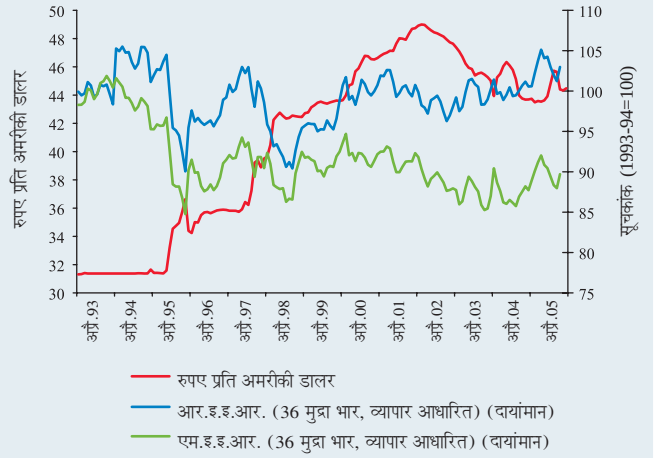

चार्ट 4: ऋण जीडीपी अनुपात

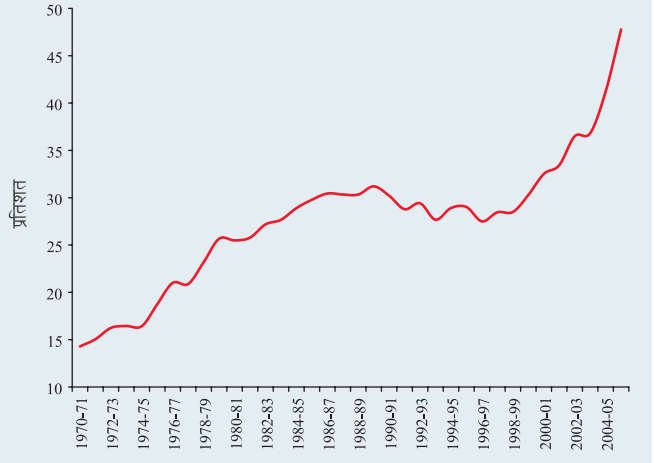

ऋण वितरण

यह मानते हुए कि भारतीय वित्तीय प्रणाली अभी भी प्रधान रुप से बैंक आधारित है, अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों का वित्त पोषण करने में बैंक ऋण अत्यंत महत्वपर्ण बना हुआ है। ब्याज दरों पर से विनियमन हटाने एंव सांविधिक पूर्व क्रयाधिकारों में कटौती के परिणामस्वरूप इस बात की अपेक्षा की गई थी कि इसी हिसाब से ऋण प्रवाह में वृद्धि होगी। ऐसी स्थिति में अभी हाल तक जब 2003-04 के दौरान ऋण वृद्धि में तेजी आई थी बैंक सरकारी प्रतिभूतियों के अंतर्गत निवेश में धारित की जा रही अपनी आस्तियों में बगैर किसी कटौती के सरकारी प्रतिभूतियों में निवेश को उल्लेखनीय रुप से तरजीह दे रहे थे। विभिन्न विनियमनों, ऋण आबंटन लक्ष्यों तथा नियंत्रित ब्याज दरों के माध्यम से ऋण के सूक्ष्म प्रबंधन के दृष्टिकोण से उधार तथा बाजार नियंत्रित ब्याज दरों की जोखिम आधारित प्रणाली में पदार्पण के बाद बैंकों को उपयुक्त ऋण जोखिम मूल्यांकन की तकनीकें खोजनी होंगी। स्वस्थ ऋण वृद्धि को बढ़ावा देने के अलावा मौद्रिक प्रबंधन में अप्रत्यक्ष लिखतों के प्रयोग की तरफ प्रस्थान को देखते हुए मौद्रिक प्रबंधन की दक्षता के लिए यह भी महत्वपूर्ण है।

गत नब्बे के दशक में ऋण प्रवाह में पाई गई जकड़न की अवलोकन करने पर लगता है कि आंशिक रुप से उस अवधि के दौरान वास्तविक ब्याज दरों के कारण मांग में कमी, व्यापार चक्र में अधोपतन तथा महत्वपूर्ण व्यापार पुनर्संरचना के कारण पैदा हुई थी। अब इसमें तेजी से सुधार हुआ है।

पिछले कुछ वर्षों में 90 के दशक के दौरान पैदा हुई गतिरोध की स्थिति में तेजी से सुधार हुआ है। 80 के दशक के मध्य तथा 90 के दशक के बीच के समय में लगभग 30 प्रतिशत के संकीर्ण दायरे से गुजरने के बाद ऋण सकल घरेलू उत्पाद अनुपात में 2000-01 से वृद्धि शुरू हो गई थी (चार्ट 4)। यह 1990-00 के दौरान 30 प्रतिशत के मुकाबले 2004-05 के दौरान बढ़कर 41 प्रतिशत और 2005-06 के दौरान 48 प्रतिशत हो गया था। तथापि, पिछले दो-एक वर्षों में ऋण में तीव्र वृद्धि ने नीतिगत चिंता तथा दुविधाओं के कुछ क्षेत्रों को भी सामने ला दिया है जिस पर बाद में चर्चा की जाएगी।

किस प्रकार मौद्रिक नीति ने अर्थव्यवस्था में वृद्धि की गति को सहयोग दिया? इस दशक के शुरूआती दौर में जैसे ही मुद्रास्फीति के साथ-साथ मुद्रास्फीति की संभावनओं में गिरावट आई, नीति ब्याज दरों को भी नीचे लाया गया। परिणामस्वरूप, सांकेतिक तथा वास्तविक ब्याज दरों दोनों में गिरावट आई। कंपनियों के ब्याज व्यय में वृद्धि दर में लगातार गिरावट आई जो 1995-96 की 25.0 प्रतिशत से गिरकर 2003-04 में ऋणात्मक रुप से 11.5 प्रतिशत हो गई (सारणी 8)। ब्याज लागतों में इस प्रकार की

सारणी 8 : मौद्रिक नीति और कंपनी निष्पादन : ब्याज दर से संबंधित संकेतक

वर्ष	ब्याज व्ययों में वृद्धि दर (%)	निधियों के कुल प्रयोगकर्ताओं की तुलना में ऋण चुकौती	ब्याज कवरेज अनुपात
1	2	3	4
1990-91	16.2	22.4	2.8
1991-92	28.7	28.3	2.7
1992-93	21.6	24.4	2.4
1993-94	3.1	20.9	2.9
1994-95	8.1	27.2	3.5
1995-96	25.0	21.5	3.6
1996-97	25.7	18.7	2.9
1997-98	12.5	8.1	2.8
1998-99	11.1	17.6	2.6
1999-00	6.7	17.6	2.8
2000-01	7.1	14.0	2.8
2001-02	-2.7	19.4	2.7
2002-03	-11.2	8.9	3.7
2003-04	-11.5	14.1	4.9

आइ.सी.आर. को ब्याज व्ययों पर ब्याज कर और ह्रास के पहले आय के रूप में परिभाषित किया जाता है।

टिपणी : यह भारिबैं द्वारा एकत्रित और सरकारी गैर वित्तीय सार्वजनिक लिमिटेड कंपनी के एक नमूने पर आधारित है।

गिरावट का कंपनियों के न्यूनतम ब्याज व्यय में सुधार पर महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है। हाल के वर्षों में ब्याज व्यय से संबंधित उन विविध सूचकों में सकारात्मक परिवर्तन हुए हैं जिनसे कंपनी क्षेत्र पर ब्याज लागत के पड़ने वाले प्रभाव पर रोशनी पड़ सकती है।

IV. कुछ उभरते हुए मुद्दे

वित्तीय क्षेत्र के सुधारों तथा मौद्रिक नीति की समीक्षा एक प्रकार से उन चरणबद्ध एवं समन्वित सुधारों का दस्तावेज हैं जिन्हें भारत में नब्बे के दशक में शुरू किया गया था। नतीजों को देखा जाए तो इस रणनीति से मूल्य स्थिरता के साथ-साथ मध्यम तथा दीर्घकालिक मुद्रास्फीति अपेक्षाओं में कमी; ब्याज दरों तथा विनिमय दर के सक्षम मूल्य निर्धारण को अपेक्षाकृत बढ़ावा देने वाले संस्थागत ढांचे की स्थापना तथा नीतिगत सुधार; बैंकिंग क्षेत्र प्रतिस्पर्धा की चरणबद्ध शुरूआत जिसके साथ-साथ सर्वश्रेष्ठ अंतरराष्ट्रीय प्रथाओं के साथ जुड़ाने में सहायक विनियमन एवं पर्यवेक्षण में तदनुरूप सुधारों के व्यापक लक्ष्य हासिल हुए हैं जिनके कारण बैंकिंग कामकाज एवं वित्तीय क्षेत्र में उल्लेखनीय सुधार हुए हैं। इन सुधारों के कार्यन्वयन के साथ ऋण तथा विदेशी मुद्रा बाजार के कामकाज के लिए भुगतान तथा निपटान प्रणालियों एवं समाशोधन प्रणालियों जैसे-महत्वपूर्ण वित्तीय आधारभूत ढांचे की स्थापना अथवा उसमें सुधार भी जुड़ा है। वित्तीय स्थिरता को काफी हद तक बनाए रखने के साथ-साथ उच्च विकास पथ की ओर अर्थव्यवस्था की सम्पूर्ण गति के कारण इस वित्तीय विकास के सभी पहलूओं को हासिल किया गया है।

वित्तीय बाजारों पर से विनियमन हटाने में वृद्धि तथा वैश्विक अर्थव्यवस्था के एकीकरण में वृद्धि होने के कारण नब्बे का दशक वैश्विक वित्तीय बाजारों के लिए उथल-पुथल से भरा था : उस दशक में 63 देशों को बैंकिंग प्रणाली का संकट झेलना पड़ा जो 80 के दशक में 45 देशो से काफी अधिक था। जिन देशो ने इस प्रकार के संकटो का सामना किया था वहां की वित्तीय प्रणाली का ढांचा पुनः खड़ा करने की प्रत्यक्ष लागत असामान्य रुप से बहुत अधिक थी : बैंकों को पुनः पूंजी प्रदान करने पर आई लागत सकल घरेलू उत्पाद का अर्जेंटिना में 55 प्रतिशत, थाईलैण्ड में 42 प्रतिशत, कोरिया में 35 प्रतिशत तथा तुर्की में 10 प्रतिशत रही। इसके अतिरिक्त इन देशों को खोये हुए अवसरों तथा सुप्त आर्थिक वृद्धि की अप्रत्यक्ष रुप से ऊंची कीमतें पड़ीं (मैककिनसे ऐंड कं.,2005)। इस लिए यह विशेष रुप से उल्लेखनीय है की भारत विश्व के वित्तीय बाजारों के उथल-पुथल से भरे इस दौर में भी बिना कोई वित्तीय संकट झेले अपनी अर्थव्यवस्था पर से वित्तीय विनियमन हटाने तथा उसे एक खुली अर्थव्यवस्था बनाने की प्रक्रिया चलाता रहा। इस प्रकार सार्वजनिक क्षेत्रों के बैंकों के पुनः पूंजीकरण की सकल घरेलू उत्पाद के प्रतिशत से भी कम लागत तुलनात्मक रूप से बहुत कम थी। हालांकि इस कार्य निष्पादन के कीर्तिमान पर हमारा प्रसन्न तथा संतुष्ट होना जायज है फिर भी, अब हमारे लिए नए मुद्दों पर ध्यान केंद्रित करना जरूरी है जिनका समाधान करना वित्तीय विकास के अगले चरण के लिए जरूरी है।

भारत में लगभग 8 प्रतिशत की चालू वार्षिक सकल घरेलू उत्पाद वृद्धि सकल घरेलू निवेश की लगभग 30 प्रतिशत दर से हासिल की जा सकी है जिससे जाहिर होता है कि हमारी अर्थव्यवस्था बड़े कारगर ढंग से चल रही है। हमें यह सुनिश्चित करने की जरूरत है कि हम सक्षमता का यह स्तर बनाए रखें तथा इसमें आगे और सुधार करने का प्रयास करते रहें। जैसे-जैसे भारतीय अर्थव्यवस्था इस विकास मार्ग पर आगे बढ़ रही है तथा इसकी गति तेज करने का प्रयास कर रही है त्यों-त्यों वित्तीय प्रणाली के समक्ष नई मांगे पैदा हो रही हैं।

वित्तीय क्षेत्र के लिए विकास बद्ध चुनौतियाँ :

लगातार ऊँची वृद्धि के परिणमस्वरूप भारी संख्या में घर परिवार बड़ी आय की श्रेणियों में प्रवेश कर रहे हैं और इस प्रकार आर्थिक बचत के अवसरों की मांग में वृद्धि के साथ-साथ उपभोग की श्रेणियों में भी वृद्धि हो रही है। विशेष रुप से ग्रामीण क्षेत्रों में भी उत्पादक अवसरों में बहुविद वृद्धि होती प्रतीत हो रही है। इस प्रकार बैंकिंग प्रणाली को उपभोग एवं उत्पादन दोनों ही प्रयोजनों के लिए इन नई मांगों को पूरा करने के लिए अपने दायरे को बढ़ाना होगा तथा स्वयं नवोन्मेषी बनाना होगा। यह विशेष रुप से महत्वपूर्ण है क्योंकि भारत में बैंकिंग की पहुंच अभी भी बहुत कम है : भारत में प्रति मिलियन आबादी पर चीन में 50 से अधिक, थाइलैण्ड में 170 तथा कोरिया 500 की तुलना में केवल लगभग 10-12 ए.टी.एम हैं। इसके अतिरिक्त भारत में जमाराशि तथा सकल घरेलू उत्पाद का अनुपात या ऋण / सकल घरेलू उत्पाद अनुपात भी अन्य एशियाई देशों की तुलना में कम है (मैक किन्से ऐंड कं.2005)।

उत्पादन के पक्ष से देखा जाए तो, औद्योगिक विस्तार में तेजी आई है, व्यापारिक वस्तुओं के व्यापार में ऊंची वृद्धि हुई है और सार्वजनिक क्षेत्र, निजी क्षेत्र तथा सार्वजनिक निजी क्षेत्रों की भागीदारी के द्वारा आधारभूत संरचना में निवेश की मांग बढ़ी है। इसके अतिरिक्त सेवा क्षेत्र एक ऐसा क्षेत्र है जिसमें लगातार उच्च वृद्धि दरें दिखाई पड़ी हैं: शिष्टाचार उद्योग, शापिंग मॉल, मनोरंजन उद्योग, चिकित्सा सुविधाएं तथा इसी प्रकार की अन्य सेवाओं के क्षेत्र में तेजी से विस्तार हो रहा है। इस प्रकार अर्थव्यवस्था में काफी अधिक बहु आयामी परिवर्तन हो रहे हैं और बैंकिंग प्रणाली को इन नई चुनौतियों, अवसरों तथा जोखिमों के प्रति पर्याप्त रुप से सक्रिय होना पड़ेगा।

ग्रामीण उद्यमों तथा शहरी क्षेत्रों के लघु एवं मध्यम उद्यमों की उपभोक्ता मांगों एवं उत्पादन मांगों का समाधान करने के लिए बैंकों को नवोन्मेषी होकर नई सुपूर्दगी व्यवस्थाओं की तलाश करनी होगी

जिनमें लेनदेन की लागत सस्ती हो और जो उनकी पहुंच के भीतर हो जो अभी भी बैंकिंग प्रणाली तक नहीं पहुंच सके हैं। इन नई ग्रामीण ऋण आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए ऋण वितरण के नए चैनेल खोजने होंगे जिसके दायरे में संपूर्ण आपूर्ति शृंखला वित्तपोषण, आवृत्त भंडारण, गोदाम सुविधा प्रदान करना, प्रसंस्करण तथा खेत से बाजार तक परिवहन आता है। ग्रामीण क्षेत्रों में ग़ैर कृषि सेवा उपक्रमों में नूतन विस्तार को वित्तपोषण करना होगा ताकि आय एवं रोजगार के नए अवसर पैदा किए जा सकें। अभिलेख संग्रह, सेवा प्रदायगी, लेनदेन की लागत में कमी, जोखिम के मूल्यांकन तथा जोखिम प्रबंधन के लिए सूचना प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में अधिक प्रयास किए जाने की जरुरत होगी। बैंकों को नई भर्ती तथा मौजूदा कर्मचारियों को सघन प्रशिक्षण के माध्यम से नए कौशल में निवेश करना होगा।

केवल सार्वजनिक क्षेत्र के बैंकों की विशाल पैमाने पर व्यापक पहुंच है और इस प्रकार उन्हीं में वित्तीय समावेशन का लक्ष्य प्रभावी ढंग से हासिल करने की क्षमता है। लेकिन इन्हीं बैंकों के सामने मानव संसाधन विकास की सर्वाधिक कठिन चुनौतियां भी हैं। सभी स्तरों पर उन्हें कौशल में वृद्धि करने के लिए भारी निवेश करना होगा। सबसे ऊपरी स्तर पर रणनीति के नए लक्ष्य तय करने; मध्यम स्तर पर इन लक्ष्यों के कार्यान्वयन के लिए तथा निचले स्तरों पर सेवा के नए तरीके देने के लिए। इन बैंकों में कर्मचारियों के आयु संबंधी मौजूदा स्वरूप को देखते हुए उन्हें अपेक्षाकृत अधिक मुक्त निजी क्षेत्र के बैंकों की तुलना में प्रतिकूल क्षतिपूर्ति ढांचे के कारण भर्ती संबंधी नई चुनौतियों का भी सामना करना पड़ेगा। इस बीच निजी क्षेत्र के नए बैंक स्वयं को नवोन्मेषी बनाते हुए निम्न आय तथा ग्रामीण बाजार के उभरते क्षेत्रों तक अपनी पहुँच में तेजी लाएंगे। इन क्षेत्रों में काम करने के लिए आवश्यक नए व्यापार मॉडलों को हासिल करने के लिए निजी क्षेत्र के इन बैंकों के पास स्वतंत्रता तथा लचीलापन भी है।

वित्तीय समावेशन की संपूर्ण प्रक्रिया को सहयोग प्रदान करने तथा बैंकिंग प्रणाली की दूर तक पहुँच में वृद्धि करने के लिए अनेक नीतिगत पहल किए जाने वाले हैं। संसद ने ऋण सूचना ब्यूरो अधिनियम पारित कर दिया है जिससे ऋण सूचना ब्यूरो की स्थापना हो सकेगी जिनमें बैंकों द्वारा अनिवार्य रुप से सूचनाओं का आदान प्रदान किया जायेगा। रिज़र्व बैंक में इन ब्यूरों की स्थापना के लिए दिशा निर्देश जारी करने की प्रक्रिया चल रही है। जैसे-जैसे यह प्रक्रिया सशक्त होती जाएगी वैसे-वैसे इससे ऋण गुणवत्ता के मूल्यांकन पर होने वाली लागत में काफी कमी आएगी। दूसरे, देश में अल्प वित्त को बढ़ावा देने के लिए काफी काम चल रहा है जिसमें सूक्ष्म वित्त संस्थाओं के विनियमन के लिए संभावित कानून पर विचार भी शामिल है। तीसरे, रिज़र्व बैंक ने बैंकों को दिशा निदेश जारी किए हैं कि वे लोगों के बीच अपनी बेहतर पहुँच हासिल करने के लिए डाक घरों जैसी एजेंसियों के इस्तेमाल सहित कुछ कार्यों की आउटसोर्सिंग कर सकते हैं। ये सारे प्रयास एक सही दिशा में किए जा रहे हैं लेकिन भारत में वित्तीय समावेशन के लक्ष्य को वास्तव में हासिल करने के लिए और भी बहुत कुछ किए जाने की जरुरत है।

ये चुनौतियां व्यावसायिक गतिविधियों के सतरंगे विस्तार के फलक से उभरती रही हैं। एक तरफ, बड़ी-बड़ी कंपनियों का आर्थिक विस्तार इतना हो जा रहा है कि वे बैंकों की विवेकपूर्ण ऋण सीमाओं को छूने लगी हैं जब वे बृहद वैश्विक बहुराष्ट्रीय कंपनियों की तुलना में अब भी बहुत छोटी हैं। दूसरी तरफ प्रौद्योगिकी में परिवर्तनों के कारण गतिविधियों के सभी क्षेत्रों में छोटे और मध्यम स्तरो पर नई गतिविधियां शुरू हो गई हैं। पहली चुनौती का सामना करने के लिए बड़े भारतीय बैंकों को अपने ढांचे में वृद्धि तथा सुदृढ़ीकरण दोनों के माध्यम से तेजी से विस्तार करने के लिए प्रोत्साहित करना होगा और विशाल कंपनियों के लिए वित्तीय बाजारों का प्रत्यक्ष सहयोग लेने के लिए कंपनी ऋण बाजार को विकसित करना होगा। निचले स्तर पर कंपनियों के लिए काम करने तथा उनकी वृद्धि में सहयोग करने के लिए बैंकों को बेहतर जोखिम प्रबंधन के साथ-साथ अपनी जोखिम मूल्यांकन प्रणालियों को मजबूत करना होगा। नए उद्यमों तथा गतिविधियों का वित्तपोषण करना बुनियादी रुप से एक जोखिम भरा काम होता है क्योंकि उनका कोई पिछला रिकार्ड या पर्याप्त संपार्श्विक उपलब्ध नहीं होता है, लेकिन बैंकों का यह कार्य है कि वे इस प्रकार का जोखिम उठाएं परंतु नपे-तुले ढंग से। सार्वजनिक क्षेत्र के बैंकों का पहले रेखांकित किए गए इतिहास को देखते हुए दृष्टिकोण में इस प्रकार के परिवर्तन के लिए मानसिक बदलाव आवश्यक है परंतु जोखिम मूल्यांकन, जोखिम प्रबंधन तथा विपणन पर केंद्रित प्रशिक्षण भी आवश्यक है।

इस परिवर्तन को आगे बढ़ाने के लिए विभिन्न नीतिगत उपाय प्रक्रियाधीन हैं। रिज़र्व बैंक ने ''निजी क्षेत्र के बैंकों के स्वामित्व एवं शासन'' पर वर्ष 2004 में नए दिशा-निदेश जारी किए थे। इन दिशा-निर्देशों के द्वारा निजी क्षेत्र के बैंकों के लिए न्यूनतम पूंजी को बढ़ाकर 3 बिलियन रुपए कर दिया गया है, इन बैंकों के स्वामियों, निदेशक मंडल के सदस्यों तथा उच्च प्रबंधन की उपयुक्त एवं उचित प्रकृति के विषय में दिशा-निदेश में वृद्धि कर दी गई है तथा प्रभावशाली शेयर धारण को सीमित कर दिया गया है। ये उपाय निजी क्षेत्र के बैंकों के स्वस्थ विकास एवं उनमें बेहतर कार्पोरेट गवर्नेंस के हिसाब से किए गए हैं। क्योंकि अर्थव्यवस्था में उनका महत्व बढ़ता जा रहा है। यहां वित्तीय स्थिरता एक प्रासंगिक मुद्दा है एक निश्चित सीमा तक सरकारी बैंकों के वर्चस्व ने इस देश को वित्तीय स्थिरता प्रदान करने में योगदान किया है। अनुभवों से प्रदर्शित हुआ है कि इन बैंकों की वित्तीय स्थिति में गिरावट के बावजूद उनके प्रति उपभोक्ताओं के भरोसे में कोई कमी नहीं होती। उपभोक्ताओं का इस प्रकार भरोसा निजी क्षेत्र के बैंकों में नहीं है। इसलिए

जैसे-जैसे उनका विस्तार होता है और उनकी हिस्सेदारी में वृद्धि होती है वैसे-वैसे पूंजी में वृद्धि तथा कार्पोरेट गवर्नेंस वित्तीय स्थिरता के लिए आवश्यक हो जाता है। दूसरे, सरकारी प्रतिभूतियों में निवेश के लिए निधियों की सांविधिक पूर्वापेक्षाओं संबंधी मौजूदा प्रावधानों के कारण इन बैंकों की उधार देने की क्षमता काफी हद तक बाधित हुई है। सरकारी प्रतिभूतियों में निवेश की न्यूनतम 25 प्रतिशत सीमा को समाप्त करने के लिए संसद में एक विधेयक पेश किया गया है। वित्तीय उत्तरदायित्व एवं बजट प्रबंधन (एफ आर बी एम) अधिनियम के अनुरूप जैसे-जैसे वित्तीय स्थिति में सुधार होगा तब जाकर सांविधिक पूर्वापेक्षा को कम करना संभव होगा जिससे विकास के लिए निजी क्षेत्र की तरफ अधिक निधि का प्रवाह होगा। तीसरे, इस विधेयक में बासेल II के अनुकूल नवोन्मेषी लिखतों के माध्यम से पूंजी जुटाने का भी प्रयास किया गया है ताकि बैंकों के विकास के लिए जरूरी उनकी पूंजी में वृद्धि हो सके।

वृहत्तर पूंजी बाजार खुलापन : कुछ मुद्दे

भारतीय वित्तीय सुधार प्रक्रिया की एक महत्वपूर्ण विशेषता चालू खाता परिवर्तनीयता के साथ-साथ पूंजी खाते को चरणबद्ध ढंग से खोलना रहा है। सरकार तथा भारतीय रिज़र्व बैंक ने पूर्णतर पूंजी खाता परिवर्नीयता संबंधी एक मार्गदर्शी नक्शा तैयार करने के लिए पहले ही एक समिति नियुक्त कर दी है।इस समिति द्वारा एक-दो महीने में अपनी रिपोर्ट पेश कर दिए जाने के बाद आगे के कदम उठाने पर निर्णय लिया जाएगा। इस बीच कुछ मुद्दे उल्लेखनीय हो सकते हैं जिन पर जैसे-जैसे हम पूर्णतर पूंजी खाता खुलापन हासिल करते जाते हैं वैसे-वैसे ध्यान दिए जाने की जरूरत होगी।

भारतीय पूंजी खाता प्रबंधन का एक मुख्य घटक विदेशी मुद्रा बाजार की अस्थिरता तथा मुद्रा बाजार पर उसके प्रभाव और इस प्रकार मौजूदा मौद्रिक नीति के लक्ष्यों द्वारा निर्देशित मौद्रिक परिचालनों पर उसके प्रभाव का प्रबंधन रहा है। जैसा कि बताया गया है, यह कार्य विदेशी मुद्रा बाजार में हस्तक्षेप, घरेलू चलनिधि प्रबंधन तथा विभिन्न रूपों में बाह्य कर्ज को विनियमित करने से संबंधित प्रशासनिक अनुदेशों के सम्मिलित प्रयास से किया गया है। इसी अनुक्रम में सरकारी प्रतिभूति बाजार, विदेशी मुद्रा बाजार एवं मुद्रा बाजार की कार्य प्रणाली और उनके क्रमिक एकीकरण की दिशा में प्रगति हुई है। विदेशी मुद्रा देयताओं के प्रति वित्तीय मध्यस्थों तथा सरकार की उसके ऋण कार्यक्रमों के संबंध में ऋण सीमा पर विशेष ध्यान दिया गया है। अभी तक इस मामले में कुछ सफलता हासिल की जा चुकी है कि विनिमय दर बाजार की पूर्ति-मांग संबंधी परिस्थितियों से सीधे-सीधे प्रभावित होती है और इसमें दो-तरफा लचीलापन दिखाई पड़ता है; इसी प्रकार ब्याज दर लचीली एवं बाजार नियंत्रित होती है; वस्तुओं एवं सेवाओं दोनों के व्यापार में स्वस्थ वृद्धि हुई है; तथा आंतरिक पूंजी प्रवाह स्वस्थ रहा है।

हमें यह मानना होगा कि पूर्णतर पूंजी खाता खुलेपन की परिणति स्वतंत्र मौद्रिक नीति, खुले पूंजी खाते तथा नियंत्रित विनिमय दर की अप्राप्य त्रयी एक साथ हासिल करने के साथ संघर्ष में होगी। अधिक से अधिक इन तीनों में कोई दो ही व्यावहारिक होंगे। 'प्रदत्त' के रूप में एक अधिक खुले पूंजी खाते के बाद और यदि मौद्रिक नीति के लिए किसी 'एंकर' भूमिका का कोई विकल्प लिया जाता है तो विनिमय दर प्रबंधन प्रभावित होगा। वस्तुतः एक मुक्त विनिमय दर से मौद्रिक नीति की स्वतंत्रता प्राप्त होती है। तथापि, इस बात को स्वीकार किए जाने की आवश्यकता है कि क्षेत्र पर विनिमय दर परिवर्तनों का प्रभाव आरक्षित चलनिधि देशों तथा भारत जैसे विकासशील देशों के लिए महत्वपूर्ण रूप से भिन्न होता है। आरक्षित चलनिधि देशों के लिए जिन्हें प्रौद्योगिकी प्रभावित उत्पादों में विशेषज्ञता प्राप्त होती है, विनिमय दर का प्रभाव कम होता है जिसके कारण निर्यातकों एवं आयातकों को चलनिधि में भारी उतार-चढ़ाव के बावजूद अस्थाई झटकों को नजर अंदाज करने तथा एकाधिकारवादी स्थितियों को बनाए रखने के लिए उत्पादों की स्थाई कीमतें निर्धारित करने में सहायता मिलती है। इसके अतिरिक्त, इन देशों के परिपक्व तथा सुविकसित बाजारों ने विनिमय दर में उतार-चढ़ावों से जुड़े जोखिम को वास्तविक गतिविधि पर उपेक्षणीय प्रभाव के साथ बर्दाश्त कर लिया है। दूसरी तरफ अधिकांश विकासशील देशों के लिए, जिन्हें श्रम केंद्रित तथा निम्नस्तरीय एवं मध्यवर्ती प्रौद्योगिकी उत्पादों में विशेषज्ञता प्राप्त है, इन उत्पादों के लिए अत्यंत प्रतियोगी बाजारों में मुनाफे का अंतर बहुत कम एवं बड़ी फुटकर श्रृंखलाओं द्वारा नियंत्रित कीमत निर्धारण शक्ति के प्रति जोखिम भरा होता है। इसके परिणामस्वरूप विनिमय दर की अस्थिरता का रोजगार, आउटपुट तथा वितरण पर महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है (मोहन, 2004 ए; 2005)। इस संदर्भ में विनिमय दर की अस्थिरता का प्रबंधन एक ऐसा मुद्दा बना रहेगा जिस पर ध्यान देना जरूरी होगा।

पूर्णतर पूंजी खाता के खुलेपन के संदर्भ में आगे एक और चुनौती विभिन्न बाजारों की वित्तीय स्थिरता को सुरक्षित रखना होगा क्योंकि पूंजी बहिर्प्रवाह तथा ऋण अंतर्प्रवाह के मोर्चे पर अधिकाधिक विनियंत्रण किया गया है। शायद विवेकपूर्ण नियंत्रणों तथा उनके पर्यवेक्षण के माध्यम से वित्तीय मध्यस्थों की जोखिम प्रवणता का समाधान किया जा सकता है; कार्पोरेट ऋण बाजार तथा विदेशी मुद्रा बाजार दोनों क्षेत्रों में आगे के परिवर्तनों के माध्यम से गैरवित्तीय संस्थाओं का जोखिम प्रबंधन करना होगा जिसके कारण वे नव्यतर बाजार लिखतों के प्रयोग के माध्यम से अपने जोखिमों का प्रबंधन कर सकते हैं। इसके लिए इन क्षेत्रों में बाजार का विकास, विनियामक क्षमता में वृद्धि तथा वित्तीय माध्यस्थों एवं ग़ैर वित्तीय संस्थाओं दोनों में मानव संसाधन विकास जरूरी होगा। पूंजी प्रवाह की अस्थिरता को छोड़कर यह अभी देखा जाना है कि क्या भारत जैसे किसी देश में वित्तीय बाजार का विकास इस

प्रकार का हो सकता है कि अस्थिरता की परिणति विनिमय दर निर्धारण में अवांछनीय उथल-पुथल में न हो जिसका अवश्यभावी प्रभाव रियल क्षेत्र तथा घरेलू मौद्रिक स्थितियों पर पड़े। यदि नहीं तो बाजार में हस्तक्षेप किस तरह के होंगे कि जिनकी जरूरत बनी रहेगी और वे कितने प्रभावी होंगे?

अधिक बड़े पूंजी बाजार के खुलेपन के एक पहलू का संबंध भारत में विदेशी बैंकों की मौजूदगी से है। सरकार तथा रिज़र्व बैंक ने फरवरी 2005 में भारत में बैंकों में विदेशी निवेश का मार्गचित्र खींच दिया था जिसमें वर्ष 2009 तक उनकी मौजूदगी की सीमा से संबंधित दिशा-निदेश दिए गए हैं। यह मार्गचित्र भारत में निजी क्षेत्र के बैंकों के स्वामित्व एवं संचालन के संबंध में साथ-साथ जारी किए गए संपूर्ण दिशा निदेशों के अनुरूप है। बाजार के कुछ क्षेत्रों में और अधिक प्रतियोगिता पैदा करने में देश में विदेशी बैंकों की मौजूदगी काफी फायदेमंद रही है। वे निवेश बैंकिंग तथा विदेशी मुद्रा बाजार के विकास में महत्वपूर्ण भागीदार की भूमिका निभाते हैं। संयुक्त राज्य अमेरिका तथा अन्य देशों में हुए परिवर्तनों के बाद जहां बैंकिंग, बीमा तथा प्रतिभूति कंपनियों के बीच परंपरागत दीवारें हटा दी गई हैं, विशाल वित्तीय प्रतिष्ठानों का आकार अत्यधिक बड़ा हो गया है। वर्ष 1995 तथा 2004 के बीच विश्व के सबसे बड़े बैंक के आकार में परिसंपत्तिवार तीन गुनी वृद्धि अर्थात् लगभग 0.5 ट्रिलियन अमेरिकी डालर से 1.5 ट्रिलियन अमरिकी डालर हो गई जो कि भारत के सकल घरेलू उत्पाद का लगभग दो गुना है। यह काफी मात्रा में विलय की प्रक्रिया से संभव हुआ है :जैसे जे.पी. मार्गन चेश 550 बैंकों तथा वित्तीय संस्थानों के विक्रय का परिणाम है। अमरिका के 10 सबसे बड़े वाणिज्यिक बैंक अब वहां लगभग आधी बैंकिंग परिसंपत्ति जिसमें अभी पिछले 10 वर्षों में 29 प्रतिशत की वृद्धि हुई है, को नियंत्रित करते हैं (इकोनॉमिस्ट, 2006)।अतः पूर्णतर पूंजी खाता परिवर्तनीयता तथा विदेशी बैंकों की संख्या में वृद्धि के कारण कालांतर में ढेर सारे मुद्दे सामने आएंगे। प्रथम, यदि वास्तविक अर्थव्यवस्थाओं के बढ़ते हुए स्तर एवं क्षेत्र के परिणामस्वरूप ये विशाल वैश्विक बैंक अस्तित्व में आए हैं तो भारत जैसे देशों में कैसे छोटे राष्ट्रीय बैंक प्रतियोगिता में टिक पाएंगे तथा क्या उन्हें स्वयं को अंतरराष्ट्रीय स्तर पर एक पहचान देने की आवश्यकता होगी? दूसरे आज विदेशी बैंकों के अपने देश के विनियामकों एवं मेजबान देश के विनियामकों के बीच अतिव्यापन तथा संभावित टकरावों पर काफी बहस चल रही है : आने वाले वर्षों में कैसे इन मुद्दों पर विचार करने के बाद उनका समाधान किया जाएगा? तीसरे, भारत जैसे किसी देश में इन विशाल बैंकों का परिचालन उनके अंतरराष्ट्रीय स्तर पर हो रहे परिचालनों की तुलना में विशेष रूप से छोटा है, इसलिए किसी खास देश के प्रति समर्पित उच्च प्रबंधन का ध्यान विशेष रूप से कम ही होता है। परिणास्वरूप, इस प्रकार के किसी बैंक द्वारा किसी देश में किए गए बाजार या विनियमन संबंधी उल्लंघन से हो सकता है उस बैंक के अंतरराष्ट्रीय परिचालनों पर उपेक्षणीय प्रभाव पड़े जबकि मेजबान देश के बैंकिंग या वित्तीय बाजार पर उसका महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ सकता है। हाल के वर्षों में यह देखा गया है कि विनियामकों द्वारा इस प्रकार के अंतरराष्ट्रीय बैंकों के विरुद्ध की गई अपेक्षाकृत कड़ी विनियामक कार्रवाई का उनकी शेयर कीमत या इसी प्रकार के आर्थिक गणित के रूप में उन पर बाजार या प्रतिष्ठा के मामले में नगण्य प्रभाव पड़ा है। इस प्रकार, ऐसे वित्तीय प्रतिष्ठानों के होने से विनियामक प्रभावकारिता को नुकसान उठाना पड़ता है। इसलिए इस प्रकार के अंतरराष्ट्रीय प्रतिष्ठानों से होने वाले फायदों तथा इनसे उत्पन्न होने वाले कुछ विनियामक तथा बाजार ढांचे तथा प्रतियोगिता से जुड़े मुद्दों के बीच तनाव पैदा होना अवश्यंभावी है।

अंतरराष्ट्रीय वित्तीय प्रतिष्ठानों के उभार के साथ-साथ हमें इसी प्रकार के भारतीय प्रतिष्ठानों में भी वृद्धि दिखाई पड़ रही है।जैसा कि अधिकतर देशों में होता है, बैंकिंग, बीमा तथा प्रतिभूति कंपनियों में से हरेक अपने-अपने विनियामक के क्षेत्राधिकार में आती है। इस प्रकार के प्रतिष्ठानों के नियंत्रण के मुद्दे पर इस बात पर सहमति के बाद कि प्रत्येक मामले में कौन अग्रणी विनियामक होगा, संगठित सहयोग की दिशा में श्री गणेश हो गया है। अमेरिका में वित्तीय होल्डिंग कंपनी प्रत्येक प्रतिष्ठान के केंद्र बिंदु में होती है जबकि प्रत्येक कंपनी उसकी सहायक होती है। फ़िर थी, भारत में प्रत्येक प्रतिष्ठान के वित्तीय ढांचे में कोई समानता नहीं होती : कुछ प्रतिष्ठानों में मूल कंपनी बैंकिंग कंपनी होती है जब कि कुछ में ढांचे का मिला-जुला स्वरूप होता है भारतीय प्रतिष्ठानों को प्रतियोगी बनाने तथा उन्हें अंतरराष्ट्रीय स्तर तक विकसित करने के लिए यह जरूरी होगा कि विनियामक दृष्टिकोण की स्पष्टता में निरंतर सुधार होता जाए।

चूंकि आने वाले समय में देश की वित्तीय प्रणाली के सामने इनमें से प्रत्येक चुनौती पेश आएगी इसलिए हमारे लिए भी यह जरूरी होगा कि हम अर्थव्यवस्था की उच्चतर वृद्धि एवं अधिक खुलेपन से उत्पन्न चेतावनियों के अनुरूप अपनी मौद्रिक नीति को ढालें।

उच्च ऋण वृद्धि एवं मौद्रिक नीति

निम्न मुद्रा स्फीति के साथ-साथ अर्थव्यवस्था में उच्च एवं अनवरत वृद्धि भारत में मौद्रिक नीति का केंद्रीय मुद्दा है। जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है हम बहुत बुद्धिमानी से इन उद्देश्यों को पूरा करने में सफल रहे हैं। इस संदर्भ में, एक मुद्दा अभी भी जीवित है : क्या मुद्रा स्फीति को नियंत्रित करने के लक्ष्य के समर्थकों के सुझाव पर हमारी मौद्रिक नीति का एकमात्र लक्ष्य मूल्य स्थिरता ही होना चाहिए। बैंक ऑफ कनाडा, बैंक ऑफ इंग्लैंड तथा रिज़र्व बैंक ऑफ न्यूजीलैंड जैसे अनेक केंद्रीय बैंकों ने स्पष्ट रूप से मुद्रास्फीति नियंत्रण के लक्ष्यों को

अपना लिया है। अन्य केंद्रीय बैंक वार्षिक मुद्रास्फीति नियंत्रण के लक्ष्यों को निर्धारित नहीं करते हैं जिनकी मुद्रा स्फीति पर विजयी होने की साख लंबे समय से स्थापित हो चुकी है (उल्लेखनीय रूप से अमरीकी फेडरल रिज़र्व)। इस प्रकार तमाम देशों के केंद्रीय बैंक स्पष्ट मुद्रा स्फीति लक्ष्य निर्धारित करने के औचित्य पर स्पष्ट रूप से विभाजित हैं। मौद्रिक लक्ष्य तथा विनिमय दर निर्धारित अर्थव्यवस्थाओं के सामने खड़ी कठिनाइयों के मद्देनज़र अनेक केंद्रीय बैंकों, जिनमें कुछ उभरती अर्थव्यवस्थाओं वाले देश भी शामिल हैं, ने मुद्रा स्फीति लक्ष्य वाले ढांचों को अपना लिया है।[3]

इस प्रकार मुद्रा स्फीति लक्ष्य का सहज सिद्धांत इतना सहज नहीं है और विकासशील देशों में मौद्रिक नीति निर्धारित करने की दिशा समस्याएं पैदा कर रही है। इसके अतिरिक्त केवल संख्यात्मक दृष्टि से मुद्रा स्फीति के लक्ष्यों पर ध्यान लगाने से मौद्रिक नीति का लचीलापन अन्य नीतिगत लक्ष्यों विशेषकर वृद्धि के लक्ष्य के संदर्भ में कम हो सकता है।

मुद्रास्फीति के लक्ष्य को अपनाने का समर्थन भारत में नहीं किया गया है जबकि उच्च तथा निरंतर वृद्धि के लक्ष्य के साथ मौद्रिक नीति के केंद्रीय लक्ष्य के रूप में निम्न मुद्रास्फीति का लक्ष्य हासिल किया जा रहा है, जो कि किसी विकासशील अर्थव्यवस्था के लिए बहुत महत्वपूर्ण है। एक मुख्य लक्ष्य के रूप में वृद्धि से संबंधित जायज चिंता के अलावा कुछ अन्य कारक भी हैं जिनसे यह निष्कर्ष निकलता है कि मुद्रा स्फीति का लक्ष्य भारत के लिए उचित नहीं होगा। प्रथम, अन्य अनेक विकासशील देशों के विपरीत हमने संतुलित मुद्रा स्फीति का रिकार्ड बनाया है जिसमें दो अंकों की मुद्रा स्फीति एक अपवाद है और जो व्यापक रूप से समाज द्वारा स्वीकार्य नहीं है। द्वितीय, मुद्रास्फीति लक्ष्य को अपनाने के लिए सक्षम वित्तीय बाजारों के परिचालन तथा ब्याज दर में उतार-चढ़ाव की गैरमौजूदगी के माध्यम से एक सक्षम मौद्रिक संचरण व्यवस्था जरुरी है। भारत में यद्यपि मुद्रा बाजार, सरकारी ऋण तथा विदेशी मुद्रा बाजारों का वास्तव में हाल ही के वर्षों में विकास हुआ है इसलिए और प्रगति करनी है जबकि कारपोरेट ऋण बाजार का अभी और विकास होना है। यद्यपि काफी हद तक ब्याज-दर के विनियंत्रण का काम पूरा कर लिया गया है लेकिन नियंत्रित ब्याज दरें भी जारी हैं। तृतीय, अभी भी मुद्रा स्फीतिकारी दबाव प्रायः कृषि पर मानसून के प्रभाव से संबंधित आपूर्ति में महत्वपूर्ण कमी से पैदा होते हैं जहां मौद्रिक नीति संबंधी कार्यवाही की भूमिका नगण्य होती है। अंततः भारत जैसी बड़ी अर्थव्यवस्था में जिसमें ढेर सारी क्षेत्रीय विषमताएं हों, तथा क्षेत्रों के बीच फैक्टर तथा उत्पाद बाजारों में बाजार संबंधी अपूर्णताओं की लगातार मौजूदगी हो, मुद्रास्फीति के एक सर्वव्यापी स्वीकार्य उपाय का चयन भी कठिन है।

केंद्रीय बैंकिंग का एक समकालीन मुद्दा परिसंपत्ति की कीमतों में परिवर्तन को तीव्र बनाने के लिए मौद्रिक नीति की समुचित प्रतिक्रिया है जिसके साथ उच्च कार्पोरेट वृद्धि भी हो सकती है। मूल्य स्थिरता तथा सुस्थिर मुद्रा स्फीति अपेक्षाओं के युग में अर्थव्यवस्था का असंतुलन खुलकर मुद्रा स्फीति के रूप में तुरंत प्रकट नहीं होता है। केंद्रीय बैंक की बढ़ी हुई विश्वसनीयता एक दोधारी तलवार है जिससे इस बात की संभावना और बढ़ जाती है कि भारी भरकम उछाल के खुलकर मुद्रा स्फीति के रूप में प्रकट होने में अधिक समय लग सकता है। उदाहरणार्थ, दुर्वहनीय परिसंपत्ति कीमतें कृत्रिम रूप से कंपनियों के लेखाकरण लाभों में इजाफा करती हैं और इस प्रकार मूल्य वृद्धि की जरूरत को कम कर देती हैं; इसी प्रकार कर्मचारियों द्वारा बड़े पैमाने पर हासिल किए गए वित्तीय फायदे आंशिक रूप से उच्चतर मजदूरी के दावों की प्रतिपूर्ति कर सकते हैं। व्यापार चक्र की उर्ध्वगति के दौरान स्वयं को सुदृढ़ करने की प्रक्रियाएं विकसित होती हैं जिसकी विशेषता बढ़ती हुई परिसंपत्ति कीमतें तथा ढीली पड़ती बाह्य वित्तीय बाधाएं हैं। 'अतार्किक उत्साह' परिसंपत्ति की कीमतों को अव्यावहारिक स्तर तक ढ़केल सकता है, बावजूद इसके कि उसी समय वस्तुओं तथा सेवाओं में किए गए व्यापार से मुद्रा स्फीति के कुछ संकेत उभरते हैं (क्रॉकेट, 2001)। संकुचन के दौर में ये शक्तियां उलटी दिशा में कार्य करती हैं। इसलिए व्यापार चक्र में उछाल के कारण वित्तीय असंतुलन पैदा हो जाते हैं। इस प्रकार इससे 'विश्वसनीयता का एक विरोधाभास' पैदा हो जाता है (बोरियो एवं व्हाइट, 2003)। इन घटनाओं को ध्यान में रखें तो ऐसा महसूस होता है कि ऋण तथा मौद्रिक समुच्चयों, जिनकी मुद्रा मांग की आसन्न अस्थिरता को देखते हुए अनेक केंद्रीय बैंकों द्वारा उपेक्षा की जा रही है, की बारीक निगरानी किए जाने की जरूरत है क्योंकि इन समुच्चयों में तीव्र वृद्धि भावी अस्थिरता का एक उपयोगी सूचकांक है।

भारत में भी हमने अन्य देशों की तरह परिसंपत्ति की कीमतों में गिरावट के बाद भारी वृद्धि देखी है। इसी के साथ-साथ निजी क्षेत्र को दिए गए ऋण में पिछले दो वर्षों में औसतन 30 प्रतिशत वर्ष के हिसाब से तीव्र वृद्धि प्रदर्शित हुई है। जबकि ऋण में वृद्धि व्यापक आधार पर हुई है, फुटकर क्षेत्र को ऋण बैंकिंग क्षेत्र के लिए निवेश के एक नए क्षेत्र के रूप में उभर रहा है जिसमें वैयक्तिक आवास ऋण की अग्रणी भूमिका है। इसे उदाहरण देकर समझाया जाए तो क्रमिक रूप से बैंक ऋण में आवास ऋण की वृद्धि का हिस्सा 1995-96 में 2.9 प्रतिशत से बढ़कर 2004-05 में 11.1 प्रतिशत हो गया है जबकि उद्योग का हिस्सा 1995-96 में 64.9 प्रतिशत से घटकर 2004-05 [4] में 25.6 प्रतिशत हो गया है। 1998-99 से पहले के फुटकर ऋण के आंकड़े उपलब्ध नहीं हैं।

[3] यद्यपि मुद्रास्फीति को लक्ष्य करने वाले ये देश 1990 के दशक के दौरान मुद्रास्फीति कम कर सके अथवा कम मुद्रास्फीति बनाए रख सके, विशेष प्रमाण दर्शाते हैं कि गैर आइ.टी देश भी इस प्रयास में सफल रहे।

इसका हिस्सा भी 1998-99 में 19.4 प्रतिशत से बढ़कर 2004-05 में 24.3 प्रतिशत हो गया है।

तब भी, उच्च ऋण वृद्धि को ध्यान में रखते हुए इस बात को सुनिश्चित किए जाने की जरूरत है कि परिसंपत्ति की गुणवत्ता को बनाए रखा जाए। चूंकि फुटकर ऋण तथा वाणिज्यिक स्थावर संपदा जैसे कुछ क्षेत्रों में ऋण वृद्धि तुलनात्मक रूप से अधिक थी इसलिए लिखतों के रूप में मौद्रिक नीति के सामने दुविधा खड़ी हो जाती है। नीतिगत दर में एक समान वृद्धि के कारण अर्थव्यवस्था के उद्योग एवं कृषि जैसे उत्पादक क्षेत्रों पर भी विपरीत प्रभाव पड़ सकता है। हालांकि नीतिगत दरों में भी वास्तव में वृद्धि की गई है फिर भी उनका मुख्य उद्देश्य उच्च एवं अस्थिर कच्चे तेल की कीमतों से उत्पन्न अनवरत दबावों के मद्देनजर मुख्य रूप से मुद्रा स्फीति की संभावनाओं को नियंत्रित करना रहा है। इसलिए यह सुनिश्चित करते हुए कि अर्थव्यवस्था के उत्पादक क्षेत्रों के लिए ऋण मांग को पूरा किया जाए, रिज़र्व बैंक ने विवेकपूर्ण उपाय किए हैं ताकि वाणिज्यिक क्षेत्र को ऋण में संपूर्ण वृद्धि में 'चरणबद्ध' रूप से कमी लाई जा सके। तदनुसार, रिज़र्व बैंक ने इन क्षेत्रों के ऋणों पर जोखिम भार को बढ़ा दिया है। इसमें दोगुने से अधिक की वृद्धि की गई है जिसके अंतर्गत विशेष क्षेत्रों के लिए मानक ऋणों पर प्रावधानीकरण अपेक्षाओं को 0.4 प्रतिशत से 1.0 प्रतिशत कर दिया गया है। इस प्रकार, मूल उद्देश्य यह सुनिश्चित करना है कि अर्थव्यवस्था में कीमतों एवं वित्तीय स्थिरता को सुनिश्चित करते हुए वृद्धि की प्रक्रिया चलती रहे।

यह कहना इस संदर्भ में तथा रिज़र्व बैंक द्वारा अपनाए गए बहु-सूचक दृष्टिकोण के संगत होगा कि भारत में मौद्रिक नीति ने लगातार उपभोक्ता तथा व्यापार के आत्मविश्वास में निहित बढ़ती हुई सकल मांग, परिसंपत्ति कीमतों, कंपनी कार्यनिष्पादन, आरक्षित मुद्रा तथा मुद्रा आपूर्ति में व्यापक वृद्धि, बढ़ते हुए व्यापार तथा चालू खाता घाटे तथा विशेष रूप से ऋण वृद्धि की गुणवत्ता के सूचकों के प्रति सजग रहने की जरूरत पर बल देता रहा है। पलट के देखें तो इस जोखिम संवेदी दृष्टिकोण से हमें सकल मांग दबावों और एक सीमा तक दूसरे चक्र के प्रभावों को नियंत्रित करने में काफी सहायता मिली है। इससे यह भी सुनिश्चित हुआ है कि एक समयावधि से वित्तीय स्थिरता को होने वाले खतरों पर लगातार निगरानी रखी गई है जब मुद्रा स्फीति की वृद्धि का दौर था तथा विशेष रूप से आवास तथा स्थावर संपदा के क्षेत्र में परिसंपत्ति की कीमतें विश्व स्तर पर मौद्रिक प्राधिकारों के लिए एक चुनौती के रूप में उभर रही हैं। महत्वपूर्ण बात है कि इससे अर्थव्यवस्था में वृद्धि की गति में सुदृढ़ता आई है। यह उल्लेखनीय है कि बैंक ऋण में चक्रीय विस्तार बिना किसी अस्थिरताकारी अस्थिरता के मुकाबले अप्रत्याशित रूप से 30 महीने तक रहा लेकिन इस स्थिति के प्रति निगरानी में वृद्धि की जरूरत है।

V. निष्कर्षात्मक विचार

अंततः, एक नपी-तुली, क्रमिक, सचेत तथा स्थिर प्रक्रिया के द्वारा भारत में वित्तीय प्रणाली के अंतर्गत ठोस रूपांतरण हुआ है। भारतीय वित्तीय क्षेत्र को ज्यादा स्पर्धात्मक, सक्षम तथा स्थिर बनाने के उद्देश्य से सुव्यवस्थित तथा समन्वित नीतिगत उपायों के माध्यम से वित्तीय प्रणाली तार्किक रूप से एक परिष्कृत, वैविध्यपूर्ण तथा मजबूत प्रणाली में रूपांतरित हो गई है। इसी के साथ-साथ अर्थव्यवस्था में निवेश की मांग तथा वृद्धि को समर्थन देने के लिए ऋण की उपलब्धता सुनिश्चित करते हुए प्रभावी मौद्रिक प्रबंधन के कारण कीमतों की स्थिरता संभव हुई है। अंत में, वित्तीय उदारीकरण के प्रति विवेकपूर्ण तथा सचेत दृष्टिकोण के साथ पूंजी खाता प्रबंधन के प्रति बहुआयामी दृष्टिकोण के कारण अनेक विकासशील तथा उभरती हुई अर्थव्यवस्थाओं के अनुभव के विपरीत वित्तीय स्थिरता हुई है। यह उपलब्धि इस तथ्य के बावजूद हुई है कि हमने वैश्विक तथा घरेलू दोनों प्रकार के भारी संख्या में घटकों को झेला हैं। इन सभी झटकों से निकलने वाली चुनौतियों का मुकाबला करने के लिए भारत में मौद्रिक नीति तथा वित्तीय क्षेत्र के सुधारों को सुव्यवस्थित किया गया। इस रोशनी में देखने पर कीमतों तथा वित्तीय स्थिरता को बनाए रखने में हासिल सफलता और ज्यादा उल्लेखनीय है।

जैसे-जैसे अर्थव्यवस्था उच्चतर विकास पथ पर ऊपर चढ़ती जाएगी तथा इसे दुनिया के शेष हिस्से के साथ और खुलेपन के साथ एकीकृत किया जाएगा वैसे-वैसे वित्तीय क्षेत्र को अपने समस्त पहलुओं में आगे काफी विकास करने की जरूरत होगी जिसके साथ-साथ विनियामक आधुनिकीकरण तथा सुदृढ़ता को जारी रखने के उपाय करने की भी जरूरत होगी। आर्थिक विकास तथा वित्तीय स्थिरता के संदर्भ में कीमतों की स्थिरता बनाए रखने का व्यापक उद्देश्य पूर्ववत् बना रहेगा।

संदर्भ

अहलूवालिया, एम.एस. (2002) ''इकोनॉमिक रिफार्म्स इन इंडिया सिंस 1991 : हैज ग्रैजुअलिज्म वर्क्ड?'' *जर्नल ऑफ इकोनॉमिक पर्सपेक्टिव्स*, 16,(3) 67-68।

बोरियो, क्लाड्डियो एण्ड विलियम व्हाइट (2003), ''व्हिदर मॉनिटरी एण्ड फाइनांसियल स्टैबिलिटी? दि इम्पलीकेशन्स ऑफ इवॉल्विंग पॉलिसी रेजिम्स'', *बी आई एस वर्किंग पेपर सं.147*।

[4] इसमें प्राथमिक उधार क्षेत्र के भीतर उपलब्ध कराए गए लघु आवास ऋण शामिल नहीं हैं।

क्रॉकेट, ए (2001), ''मॉनिटरी पॉलिसी एण्ड फाइनांसियल स्टैबिलिटी'', लेक्चर डेलिवर्ड एट दि एच के एम ए डिस्टिंग्विश्ड लेक्चर, फरवरी।

मै किनसी एण्ड कंपनी (2005), *इंडियन बैंकिंग 2010: ट्रुवर्ड्स ए हाई परफार्मिंग सेक्टर*, नई दिल्ली।

मोहन राकेश (2004 ए), ''चैलेंजेस टू मॉनिटरी पॉलिसी इन ए ग्लोबलाइजिंग कॉन्टेक्स्ट'', *रिज़र्व बैंक ऑफ इंडिया बुलेटिन*, जनवरी।

मोहन राकेश (2004 बी), ''फाइनांसियल सेक्टर रिफार्म इन इंडिया : पालिसीज़ एंड परफार्मेंस अनालिसिस'', *रिज़र्व बैंक ऑफ इंडिया बुलेटिन*, अक्टूबर।

मोहन राकेश (2005), ''सम अपरैन्ट पजल्स फॉर कंटेम्परेरी मॉनिटरी पॉलिसी'', *रिज़र्व बैंक ऑफ इंडिया बुलेटिन*, दिसंबर।

मोहन राकेश (2006 ए), ''रिफार्म, प्रोडक्टिविटी एंड एफिसिएंसी इन बैंकिंग : दि इंडियन एक्सपीरिएंस'', रिज़र्व बैंक ऑफ इंडिया बुलेटिन, मार्च।

मोहन राकेश (2006 बी), ''कोपिंग विद लिक्वीडिटी मैनेजमेंट इन इंडिया : ए प्रैक्टीशनर्स व्यू'', रिज़र्व बैंक ऑफ इंडिया बुलेटिन, अप्रैल।

मोहन राकेश (2006 सी), ''रीसेंट ट्रेंडस इन इंडियन डेट मार्केट एंड करेंट इनिशिएटिव्स,'' रिज़र्व बैंक ऑफ इंडिया बुलेटिन, अप्रैल।

मोहन राकेश (2006 डी), ''इव्लूशन ऑफ सेंट्रल बैंकिंग इन इंडिया'', www.rbi.org.in. पर उपलब्ध।

वाय.वी.रेड्डी (2002), ''भारत में मौद्रिक और वित्तीय क्षेत्र के सुधार: एक व्यवसायकर्ता का दृष्टिकोण '', www.rbi.org.in पर उपलब्ध।

रेड्डी, वाई वी (2006 ए), ''चैलेंजेस एंड इन्फ्लीकेशंस ऑफ बॅसल II फॉर एशिया'', अवलेबल एट www.rbi.org.in।

रेड्डी, वाई.वी. (2006 बी), ''ग्लोबल इम्बैलेंसेज एन इंडियन पर्सपेक्टिव'', www.rbi.org.in पर उपलब्ध।

रिज़र्व बैंक ऑफ इंडिया (2004), *रिपोर्ट ऑन करंसी एंड फाइनांस, 2003-04* ।

दि इकोनॉमिस्ट (2006), ''स्पेशल रिपोर्ट ऑन इंटरनेशनल बैंकिंग'', मई 20-26।